# अच्छी कहानियाँ

सप्रेम भेंट
श्रीमती माशादेवी
पत्नि स्व० श्री राम स्वरूप धीमान्

सम्पादिका

शचीरानी गुर्टू एम० ए०

शक

बम्बई भूषण प्रेस

मथुरा

प्रकाशक
बम्बई भूषण प्रेस
मथुरा

मुद्रक
ऑक्सफोर्ड एण्ड कैम्ब्रिज प्रेस
दिल्ली

## सूची

# भूमिका

कहानी जीवन के श्रेय और हेय सभी तत्त्वों को भीतर समेटे हुए मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों को उद्भावित करती । कहानी का सत्य जीवन के सत्य से भिन्न नहीं है, वरन् क के बिना दूसरे का अस्तित्व वांच्छनीय नहीं। अतएव मानव के सम्पूर्ण क्रिया-कलाप एवं उसकी अशेष चित्तवृत्तियों के भीतर मचनेवाला गूढ़तम अन्तर्भावों का आलोड़न ही कहानी का प्राण है।

कहानी कैसी हो—इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार कहानी जीवन की प्रतिरूप होनी चाहिए, किन्तु कुछ लोग कहानी में रोचक, आकर्षक तत्त्वों को अधिक महत्त्व देते हैं। वस्तुतः मनोरंजक कहानियों की माँग हमेशा से हुत अधिक रही है और इससे सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों के मन परितृप्ति होती है, किन्तु कहानी में मनोरंजन की स्वाभाविक ...था के साथ साथ कथानक, चरित्र-चित्रण, वार्त्तालाप, सूक्ष्म ...नोवैज्ञानिक अंकन, प्रसंगानुकूल वाक्यों और शब्दों का ...योग, भाषा और शैली, घटनाओं की सुव्यवस्थित संयोजना ...र रचना-संगठन पर भी ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। कहानी ...व जीवन के व्यापक अर्थ को व्यंजित करने वाली हो, साथ उसकी प्रमुख घटनाओं, कथानक और चरित्र की व्याख्या

वृत्ति एवं भावुक अन्तःप्रकृति को एक व्यापक संवेदना से भर दे।"

## उपन्यास और कहानी में अन्तर

कुछ लोग कहानी और उपन्यास में बहुत थोड़ा भेद मानते हैं, प्रत्युत् यों कहें कि कहानी को उपन्यास का ही छोटा रूप समझते हैं। कहानी और उपन्यास इसलिए भी एक दूसरे के साथ गुँथ गए हैं, क्योंकि बहुत से उपन्यासकार उतनी ही खूबी से कहानी-साहित्य का भी सृजन करते हैं (यद्यपि कई बार उतनी खूबी से नहीं)। प्रायः कहानी-लेखक अनुभव और परिपक्वता पाकर कहानीकार से उपन्यासकार में परिणत हो गए हैं, किन्तु इसका प्रधान कारण है कहानी के विधायक तत्त्वों से उनका गहरा लगाव जो उनमें आत्म-विश्वास जगाता है और उपन्यास के विस्तृत 'कन्वास' पर चित्रण करने की सूक्ष्म प्रतिभा प्रदान करता है।

कुशल लेखक भले ही उपन्यास और कहानी की विभेदक सीमा को लाँघने की क्षमता रखता हो, किन्तु नए कहानीकार को दोनों की पृथक् पृथक् टेकनीक को हृदयंगम कर लेना चाहिए।

(१) उपन्यास और कहानी का प्रमुख भेद विस्तार और सीमा का है। उपन्यास का विस्तृत चित्रपट मानव-जीवन की विविध परिस्थितियों एवं समस्याओं का लेखा लिए होता है, किन्तु कहानी की संकीर्ण परिधि में मानव-जीवन के किसी एक अंश पर ही प्रकाश डाला जा सकता है। एक मुख्य घटना, जीवन की कोई स्थिति-विशेष अथवा किसी केन्द्रीय भावना को

लेकर कहानी लिखी जाती है। उसमें अनावश्यक प्रसंग, विरोधी वृत्तियाँ, मुख्य ध्येय के विपरीत एक जीवन से टक्कर लेने वाले दूसरे प्रतिरोधी जीवन के तथ्य नहीं रखे जा सकते। कथा, परिस्थिति और घटनाओं का तारतम्य एक ही केन्द्रबिन्दु की ओर अनुधावित होता है। उदाहरणार्थ—प्रेमचन्द की 'प्रेरणा' कहानी को लिया जा सकता है।

सूर्यप्रकाश नामक विद्यार्थी अत्यन्त शैतान और शरारती है। उसकी विचित्र कपट-क्रीड़ा, ऊधम और षड्यन्त्रों से समस्त विद्यार्थी और शिक्षक संत्रस्त रहते हैं। उसका अपने क्लास का प्रोफेसर सबसे अधिक परेशान है, किन्तु दैवयोग से उस की बदली हो जाती है। विदा के क्षणों में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों में ही गुप्त स्नेह उमड़ पड़ता है। शैतान सूर्यप्रकाश के हृदय में पश्चात्ताप का अंकुर जमता है और उसकी आँखों में अश्रु-बिन्दु छलक आते हैं। लेखक पश्चात्ताप को केन्द्र-बिन्दु बना कर ही कहानी का क्रमिक विकास दर्शाता है। प्रोफेसर का त्यागपत्र, गाँव में एकान्त-वास, अकस्मात् डिप्टी-कमिश्नर के रूप में सूर्यप्रकाश से भेंट, उसकी जीवन-परिस्थितियों के सिलसिले में कि कैसे छोटे भाई की संगति से उसकी कायापलट हो गई आदि बातों से मुख्य ध्येय पर प्रकाश पड़ता है। सूर्यप्रकाश के स्वभाव में परिवर्तन और उसकी आदतों में सुधार—इस प्रकार एक व्यक्ति-विशेष के जीवन में लगे प्रश्न-चिह्न सहसा उद्घाटित होते हैं।

इसके लिए आवश्यकता नहीं कि कोई एक केन्द्रीय घटना

अथवा परिस्थितिजन्य द्वन्द्वों की कचोट से ही छोटी कहानी को सफल बनाया जा सकता है। कचोट और तीव्रता नष्ट होते ही कहानी समाप्त हो जाती है। ऐसी कहानियों में घटनाओं का संयोजन इस प्रकार का होता है कि चरम स्थिति पर पहुँच कर अंत में उनका प्रभाव पड़ता है।

एक दूसरी छोटी अंग्रेजी कहानी में जिसमें प्लॉट की अपेक्षा चरित्र-चित्रण की विशेषता है, एक ऐसे व्यक्ति का बड़ा ही अनूठा शब्द-चित्र अंकित किया गया है जो युद्ध में अन्धा होकर निराश और दुखी अपने पैदायशी ग्राम में लौटता है। वहाँ मार्ग में भटकते हुए उसकी वृद्ध कर्नल से भेंट होती है जो हाथ पकड़ कर उसका पथ-प्रदर्शन करता है। जिन वस्तुओं को देखने में वह अक्षम है उनका रोचक वर्णन करके कर्नल उसके निराश और विपन्न हृदय में प्रेरणा और प्रोत्साहन भरता है। उसके साथी के मधुर शब्द शक्तिवर्द्धक टॉनिक की भाँति उसमें आश्चर्यजनक स्फूर्त्ति भर देते हैं। उसकी प्रसन्न मुद्रा और चहकती बातों को सुन कर उसके विचार और दृष्टिकोणों में परिवर्त्तन हो जाता है। वृद्ध कर्नल के विदा होते ही वह आत्म-तोष और शान्ति का अनुभव करता हुआ चुपचाप बैठ जाता है। तभी उसकी उस लड़की से भेंट होती है जो इस दुरवस्था में भी उसकी सहायिका रही है। वह उसे बताती है कि वृद्ध कर्नल भी उसकी भाँति बिलकुल अंधा है।

जैसा कि स्पष्ट है इस कहानी का निष्कर्ष चरम स्थिति पर पहुँच कर ही प्रकट होना चाहिये था। बीच में ही उसको

उद्घाटित करना समयोचित और प्रभावोत्पादक न होता। क्लाइमेक्स पर पहुँच कर तीव्रतम स्थिति के साथ ही साथ कहानी का अंत भी वांच्छनीय होना चाहिए।

(२) कहानी में दूसरी विचारणीय बात उसके आकार की है। कहानी कितनी बड़ी हो-इस पर अन्तिम रूप से निर्णय देना कठिन ही नहीं असम्भव है। कुछ कहानियाँ इतनी बड़ी लिखी गई हैं जिन्हें हम आसानी से छोटा उपन्यास ही कह सकते हैं। प्रायः सभी विज्ञ सम्पादकों के मतानुसार कहानी की सीमा ३००० से ४००० शब्दों तक की अधिक सुविधाजनक है, यों बहुत सी कहानियाँ ढाई सौ से आठ हजार शब्दों तक की भी मिलती हैं। वस्तुतः कहानी और उपन्यास में अन्तर केवल आकार का ही नहीं, वरन् रचना-प्रणाली और उद्देश्य का भी है।

(३) कहानी के मूलतः निर्माणक तत्त्व उपन्यास की अपेक्षा साधारण हैं। आधारभूत केन्द्रीय भावना के अतिरिक्त अनावश्यक प्रसंग, एक से अधिक तथ्यों की चर्चा तथा ऐसे पात्रों का चित्रण जो कहानी की एकतथ्यता और प्रमुख उद्देश्य पर व्याघात पहुँचाते हैं—छोटी कहानी में बहुत कम गुंजायश रखते हैं। ज्ञात एवं अज्ञात रूप से लेखक द्वारा प्रत्येक वाक्य का परीक्षण होना चाहिए, बड़ी बारीकी और बुद्धिमानी से यह जानने के लिए कि वह कहानी के विकास में कहाँ तक सहायक है। नए कहानी लेखकों में ऐसी कुछ अजीब आदतें होती हैं कि वे जो कुछ एक बार लिख लेते हैं उसे फिर निकालना नहीं

चाहते, विशेषकर जब उन्हें कोई शब्द अथवा मुहावरा रुच जाए। यह बुरी आदत है और इसका दृढ़ता से बहिष्कार होना चाहिए। कहानी लिखते हुए प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर गम्भीरता पूर्वक मनन करके यह निर्णय कर लेना चाहिए कि क्या वह कहानी के लिए आवश्यक है। कथावस्तु अथवा ईप्सित प्रसंग की वह मदद तो कर रहा है। यदि कोई वाक्य व्यर्थ हो और प्रस्तुत विषय से उसका सीधा सम्बन्ध न हो तो उसका हटा देना ही ठीक है।

(४) इसके अतिरिक्त कहानी का एक और विशिष्ट एवं अत्यावश्यक गुण है, जिसको अनुभवी लेखक तो अप्रज्ञात रूप से भाँप ही लेते हैं, किन्तु नए लेखकों को समझने में कठिनाई होती है।

यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक नहीं कि कहानी के सभी परिपोषक अंतरंग तत्त्वों में जीवन का खुला निर्बाध प्रयोग होता है। कहानीकार भौतिक तत्त्वों से पराङ्मुख होकर कभी भीतर की ओर अपनी शक्ति केन्द्रित करता है और कभी कल्पना से प्रसूत सामान्य रागवाले क्रिया-कलापों और विस्तृत संदर्भों का मार्मिक अंकन करता हुआ जीवन की संश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं की व्याख्या में प्रवृत्त होता है। जब हम कोई कहानी पढ़ते हैं तो हमें लगता है कि विश्वजनीन तत्त्वों से परे कहानी का सम्बन्ध सर्वसाधारण की चित्तवृत्ति और वातावरण से अधिक है, जिससे प्रभावित होकर लेखक ने उसका निर्माण किया है। हम बिल्कुल ही दूसरी दुनियाँ में पहुँच जाते हैं। कथा-सम्राट्

श्री प्रेमचन्द ने कहानी की विवेचना करते हुए लिखा है, "साहित्य में कहानी का स्थान इसीलिए ऊँचा है कि वह एक क्षण में ही, बिना किसी घुमाव-फिराव के, आत्मा के किसी न किसी भाव को प्रकट कर देती है, आत्मा की ज्योति की आंशिक झलक दिखा देती है और चाहे थोड़ी मात्रा में ही क्यों न हो, वह हमारे परिचय का, दूसरों में अपने को देखने का, दूसरे के हर्ष या शोक को अपना बना लेने का क्षेत्र बढ़ा देती है।"

जीवन के अनन्त प्रवाह एवं अंतर्संघर्षों में झाँककर देखने की कांक्षा मानव-स्वभाव है। गहरे और प्रखर मनोभावों, जिन्दगी की ऊँच-नीच और गहराइयों में पैठ कर मानवीय दुर्बलताओं और उसकी सशक्त चेष्टाओं को अवगत करना, सत् और असत् के संघर्ष, मनोरंजक अथवा हृदय को हिला देने वाले सूक्ष्म रहस्यों के गूढ़ आशय को समझने का प्रयत्न करना तथा ऐसे अनगिनत दृश्यों, दशाओं और मार्मिक पहलुओं को हृदय में उतार लेना मानव की सहजात वृत्ति है, जो हमें विषय-विस्तार में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करती है। कभी कभी कहानियों को पढ़कर लगता है जैसे हम किन्हीं सच्ची घटनाओं में से गुजर रहे हैं। जीवन के अगणित दृश्य-चित्र, अतीत की बातें, कब की, कहाँ की सुनी-देखी घटनाएँ कहानियों को पढ़ते हुए मानस-पटल पर अनायास ही कौंध जाती हैं। कभी कभी तो यथार्थ जीवन की घटनाओं से भी अधिक कहानियाँ हमारे हृदय पर प्रभाव डालती हैं। इसका कारण है कि कुछ कहानीकार जीवन के यथार्थ और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को

इस स्वाभाविकता से कहानी में चित्रित करते हैं कि पाठक के सूक्ष्म मनोभाव उसमें केन्द्रित होकर सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में, "कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र तो मनुष्य स्वयं हो सकता है, मगर कहानी के पात्रों के सुख-दुःख से हम जितना प्रभावित होते हैं उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते,—जब तक वह निजत्त्व की परिधि में न आ जाय। कहानियों में पात्रों से हमें एक ही दो मिनट के परिचय में निजत्त्व हो जाता है और हम उनके साथ हँसने और रोने लगते हैं। उनका हर्ष और विषाद हमारा अपना हर्ष और विषाद हो जाता है, इतना ही नहीं, बल्कि कहानी पढ़कर वे लोग भी रोते या हँसते देखे जाते हैं जिन पर साधारणतः सुख-दुःख का कोई असर नहीं पड़ता। जिनकी आँखें श्मशान या क़ब्रिस्तान में भी सजल नहीं होतीं, वे लोग भी उपन्यास-कहानी के मर्मस्पर्शी स्थलों पर पहुँच कर रोने लगते हैं।

शायद इसका यह कारण भी हो कि स्थूल प्राणी सूक्ष्म मन के उतने समीप नहीं पहुँच सकते जितने कि कथा के सूक्ष्म चरित्र के। कथा के चरित्रों और मन के बीच में जड़ता का वह पर्दा नहीं होता जो एक मनुष्य के हृदय को दूसरे मनुष्य के हृदय से दूर रखता है। और अगर हम यथार्थ को हू-बहू खींचकर रखदें तो उसमें कला कहाँ है? कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है।"

कुशल कहानीकार की खूबी है कि वह अपनी कहानी में

श्री प्रेमचन्द ने कहानी की विवेचना करते हुए लिखा है, "साहित्य में कहानी का स्थान इसीलिए ऊँचा है कि वह एक क्षण में ही, बिना किसी घुमाव-फिराव के, आत्मा के किसी न किसी भाव को प्रकट कर देती है, आत्मा की ज्योति की आंशिक झलक दिखा देती है और चाहे थोड़ी मात्रा में ही क्यों न हो, वह हमारे परिचय का, दूसरों में अपने को देखने का, दूसरे के हर्ष या शोक को अपना बना लेने का क्षेत्र बढ़ा देती है।"

जीवन के अनन्त प्रवाह एवं अंतर्संघर्षों में झाँककर देखने की कांक्षा मानव-स्वभाव है। गहरे और प्रखर मनोभावों, जिन्दगी की ऊँच-नीच और गहराइयों में पैठ कर मानवीय दुर्बलताओं और उसकी सशक्त चेष्टाओं को अवगत करना, सत् और असत् के संघर्ष, मनोरंजक अथवा हृदय को हिला देने वाले सूक्ष्म रहस्यों के गूढ़ आशय को समझने का प्रयत्न करना तथा ऐसे अनगिनत दृश्यों, दशाओं और मार्मिक पहलुओं को हृदय में उतार लेना मानव की सहजात वृत्ति है, जो हमें विषय-विस्तार में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करती है। कभी कभी कहानियों को पढ़कर लगता है जैसे हम किन्हीं सच्ची घटनाओं में से गुजर रहे हैं। जीवन के अगणित दृश्य-चित्र, अतीत की बातें, कब की, कहाँ की सुनी-देखी घटनाएँ कहानियों को पढ़ते हुए मानस-पटल पर अनायास ही कौंध जाती हैं। कभी कभी तो यथार्थ जीवन की घटनाओं से भी अधिक कहानियाँ हमारे हृदय पर प्रभाव डालती हैं। इसका कारण है कि कुछ कहानीकार जीवन के यथार्थ और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को

इस स्वाभाविकता से कहानी में चित्रित करते हैं कि पाठक के सूक्ष्म मनोभाव उसमें केन्द्रित होकर सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में, "कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र तो मनुष्य स्वयं हो सकता है, मगर कहानी के पात्रों के सुख-दुःख से हम जितना प्रभावित होते हैं उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते,—जब तक वह निजत्त्व की परिधि में न आ जाय। कहानियों में पात्रों से हमें एक ही दो मिनट के परिचय में निजत्त्व हो जाता है और हम उनके साथ हँसने और रोने लगते हैं। उनका हर्ष और विषाद हमारा अपना हर्ष और विषाद हो जाता है, इतना ही नहीं, बल्कि कहानी पढ़कर वे लोग भी रोते या हँसते देखे जाते हैं जिन पर साधारणतः सुख-दुःख का कोई असर नहीं पड़ता। जिनकी आँखें श्मशान या क़ब्रिस्तान में भी सजल नहीं होतीं, वे लोग भी उपन्यास-कहानी के मर्मस्पर्शी स्थलों पर पहुँच कर रोने लगते हैं।

शायद इसका यह कारण भी हो कि स्थूल प्राणी सूक्ष्म मन के उतने समीप नहीं पहुँच सकते जितने कि कथा के सूक्ष्म चरित्र के। कथा के चरित्रों और मन के बीच में जड़ता का वह पर्दा नहीं होता जो एक मनुष्य के हृदय को दूसरे मनुष्य के हृदय से दूर रखता है। और अगर हम यथार्थ को हू-बहू खींचकर रखदें तो उसमें कला कहाँ है? कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है।"

कुशल कहानीकार की खूबी है कि वह अपनी कहानी में

यथार्थ की भ्रान्ति उत्पन्न करदे जो यथार्थ न होती हुई भी यथार्थ सी ही ज्ञात हो। इस कला में जो जितना ही पारंगत होगा उतना ही वह सफल कलाकार हो सकता है।

## प्लॉट

यों तो कहानी में क्रमबद्धता अथवा घटनाओं के संयोजन का कोई नियम नहीं है, तथापि कथा-तत्त्वों के उत्कर्ष के लिए सुन्दर प्लॉट होना आवश्यक है। प्लॉट में परिवर्त्तन की स्थितियाँ इतनी सुसंगठित होनी चाहिए कि घटनाओं का एक निश्चित क्रम हो जाए और वे अभ्यंतर के गहन, सूक्ष्म सत्यों को उद्घाटित करती हुई अपना सामूहिक प्रभाव छोड़ जाएँ।

जीवन के जिस क्षेत्र से कहानीकार अपनी कहानी का प्लॉट ले उससे उसे पूर्ण अवगत होना चाहिए। अपनी प्रखर कल्पना-शक्ति से वह ऐसे भी कितने ही दृश्यों, दशाओं और मनो-भावों को प्लॉट के साथ ग्रथित कर सकता है जिसका उसने प्रत्यक्ष अनुभव न करके कल्पना द्वारा अनुमान लगाया हो। यह सत्य है कि संसार की विभिन्न वस्तुएँ, प्रकृति का उन्मुक्त प्रसार और उसमें छिपे अगणित रहस्य तथा मानव-जीवन के कतिपय मर्मस्पर्शी पहलू कहानी के प्लॉट और विषय बन सकते हैं, तथापि उसमें मानवीय आत्मा की वह उदात्त रेखा होनी चाहिए जो कहानी को प्रभावशाली और प्रेरक शक्ति से भर दे। कुछ कहानियाँ बहुत पुराने विषयों को लेकर ही चलती रहती हैं, यथा—कौतूहल और वैचित्र्य से भरी छोटी।

छोटी प्रणय कथाएँ जो दुःखान्त अथवा सुखान्त होती हैं, सामान्य जीवन-स्थिति के लोगों की घरेलू व्यवस्थाएँ, कल्पित और रहस्यपूर्ण किस्से, त्याग और बलिदान को दर्शाने वाले विषय, ऐसे प्लॉट जिसमें किसी दुष्ट व्यक्ति की प्रधानता रहती है अथवा किसी महत् निष्कर्ष को लेकर चलने वाली कहानियाँ जिनमें सज्जन का उत्कर्ष और दुर्जन का अपकर्ष दिखाया जाता है आदि इस प्रकार के अहर्निश उपयोग में आने वाले साधारण और परिचित विषय भी कुशल कहानीकार की लेखनी से असाधारण और जीवन-सिद्धान्तों से ओतप्रोत होते हैं। नए दृष्टिकोण से लिखे हुए पुराने प्लॉट कलात्मक स्पर्श पाकर मनोज्ञ और आकर्षक तत्त्वों से युक्त, आचार की विचित्रताओं से चर्चित, व्यापक संवेदना और मानवीयता से आप्लावित, इस लोक के होते हुए भी कहीं और के, किन्हीं अन्य ही प्रकार के व्यक्तियों से भरे दीख पड़ते हैं जो पाठकों के हृदयपर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

प्लॉट क्या है ? यह कहना अथवा इसकी ठीक ठीक व्याख्या करना कठिन है, किन्तु हम इसे कहानी का ढाँचा कह सकते हैं। चरित्र-चित्रण, वार्त्तालाप और वर्णन की संकुलता से मुक्त वह कहानी का शरीर-मात्र है। कभी कभी प्लॉट और थीम (मन्तव्य) में भी भ्रम हो जाता है। निःसन्देह, प्लॉट शरीर है तो थीम केन्द्रस्थ आत्मा। थीम कहानी को सबल और सशक्त बनाता है।

एक छोटी अंग्रेजी कहानी में कश्चित् दम्पति, जो अनेक

आर्थिक कठिनाइयों में से गुजर रहे हैं, अपने विवाह के प्रथम वार्षिकोत्सव पर एक दूसरे को अच्छा से अच्छा उपहार देने को उत्सुक हैं। वे चुपचाप बिना बताए अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु गँवाकर भी भेंट देना चाहते हैं। वह शुभ-तिथि आती है और पति अपनी पत्नी के सुन्दर बालों के लिए कीमती पिन, कंघे आदि अपनी प्रिय घड़ी बेचकर ले आता है, किन्तु सहसा उसे यह जानकर अत्यन्त दुःख होता है कि पत्नी ने उसकी घड़ी के लिए सोने की चेन भेंट करने के उद्देश्य से अपने लम्बे, लहराते काले बाल कटवा दिए हैं।

उपर्युक्त कहानी के प्लॉट में केन्द्रस्थ विषय भेंट का क्रूर व्यंग है जो कहानी को सशक्त बनाता है।

प्लॉट और थीम में पर्याप्त अन्तर है। थीम में साधारणतः एक ही विषय की प्रमुखता रहती है, प्लॉट परोक्ष-अपरोक्ष रूप से अनेक छोटी-मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। थीम सहसा लेखक के मस्तिष्क में कौंध जाता है, जब कि प्लॉट की रूपरेखा शनैः शनैः तैयार की जाती है। जैसी कि कुछ लोगों की धारणा है सामान्य घटनाओं का वर्णन मात्र ही प्लॉट नहीं है। प्लॉट का सर्वाङ्ग-गठन इस प्रकार होना चाहिए कि उसका यदि कोई अंश निकाल लिया जाए तो वह अपंग न हो। ऐसा निर्माण-कौशल कहानी को असाधारण बना देता, यद्यपि ऐसी श्रेष्ठ कहानियाँ विश्व-साहित्य में बहुत कम मिलती हैं।

प्लॉट ढूँढ़ने के लिए कहानीकार के सम्मुख समग्र मानव-

जीवन बिखरा रहना चाहिये, यों ऐसा संभव नहीं कि उसके सभी विभिन्न पहलू समान रूप से मूल्यवान् समझे जायँ। नए लेखकों को कुछ उत्कृष्ट कहानियों के प्लॉट हृदयंगम कर लेने चाहिए। जो कोई अच्छी कहानी उसकी नज़रों से गुज़रे उसके प्रतिपाद्य विषय का मूल्य आँकने के लिए उससे उद्भूत रागात्मक तत्व की शक्तिमत्ता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए उसे उसके गुण-दोषों का संक्षिप्त विवेचन किसी कॉपी में लिख लेना चाहिए। इस प्रकार तीस-चालीस अच्छे प्लॉट लिख लेने पर कहानी लिखने की कला उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है।

सर वाल्टर बेसेंट के अनुसार अच्छे प्लॉट ढूँढ़ने के लिए "कहानीकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ़ मिलते रहते हैं।" जीवन में घटित होने वाली छोटी छोटी घटनाएँ, समाचार-पत्रों में पढ़ी हुई खबरें, स्टेशनों, गलियों, व्यस्त सड़कों, अदालतों और इतस्ततः बिखरे अगणित दृश्यों को देखकर कहानी लिखने की प्रेरणा मिलती है। मान लीजिए हम किसी अखबार में हड़ताल की खबर पढ़ते हैं। अचानक मनन करते करते हमारी आँखों के सामने एक चित्र खिंच जाता है। मेहनतकश मज़दूर वर्ग की दर्दनाक जीवन-स्थितियाँ, स्त्री, पुरुषों और बच्चों की दुरवस्था, पग-पग पर उच्चवर्ग द्वारा उनकी भर्त्सना, तिरस्कार और अवहेलना आदि दृश्य एक के बाद एक दृष्टि-पथ के समक्ष खिंच जाते हैं। तत्क्षण हमारा ध्यान खिंच कर किसी प्लॉट पर केन्द्रित हो जाता है और हम

आर्थिक कठिनाइयों में से गुजर रहे हैं, अपने विवाह के प्रथम वार्षिकोत्सव पर एक दूसरे को अच्छा से अच्छा उपहार देने को उत्सुक हैं। वे चुपचाप बिना बताए अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु गँवाकर भी भेंट देना चाहते हैं। वह शुभ-तिथि आती है और पति अपनी पत्नी के सुन्दर बालों के लिए कीमती पिन, कंघे आदि अपनी प्रिय घड़ी बेचकर ले आता है, किन्तु सहसा उसे यह जानकर अत्यन्त दुःख होता है कि पत्नी ने उसकी घड़ी के लिए सोने की चेन भेंट करने के उद्देश्य से अपने लम्बे, लहराते काले बाल कटवा दिए हैं।

उपर्युक्त कहानी के प्लॉट में केन्द्रस्थ विषय भेंट का क्रूर व्यंग है जो कहानी को सशक्त बनाता है।

प्लॉट और थीम में पर्याप्त अन्तर है। थीम में साधारणतः एक ही विषय की प्रमुखता रहती है, प्लॉट परोक्ष-अपरोक्ष रूप से अनेक छोटी-मोटी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है। थीम एकदम लेखक के मस्तिष्क में कौंध जाता है, जब कि प्लॉट की रूपरेखा शनैः शनैः तैयार की जाती है। जैसी कि कुछ लोगों की धारणा है सामान्य घटनाओं का वर्णन मात्र ही प्लॉट नहीं है। प्लॉट का सर्वाङ्ग-गठन इस प्रकार होना चाहिए कि उसका यदि कोई अंश निकाल लिया जाए तो वह अपंग न हो। ऐसा निर्माण-कौशल कहानी को असाधारण बना देगा, यद्यपि ऐसी श्रेष्ठ कहानियाँ विश्व-साहित्य में बहुत कम मिलती हैं।

प्लॉट ढूँढ़ने के लिए कहानीकार के सम्मुख समग्र मानव-

जीवन बिखरा रहना चाहिये, यों ऐसा संभव नहीं कि उसके सभी विभिन्न पहलू समान रूप से मूल्यवान् समझे जायँ। नए लेखकों को कुछ उत्कृष्ट कहानियों के प्लॉट हृदयंगम कर लेने चाहिए। जो कोई अच्छी कहानी उसकी नज़रों से गुज़रे उसके प्रतिपाद्य विषय का मूल्य आँकने के लिए उससे उद्भूत रागात्मक तत्व की शक्तिमत्ता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए उसे उसके गुण-दोषों का संक्षिप्त विवेचन किसी कॉपी में लिख लेना चाहिए। इस प्रकार तीस-चालीस अच्छे प्लॉट लिख लेने पर कहानी लिखने की कला उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है।

सर वाल्टर बेसेंट के अनुसार अच्छे प्लॉट ढूँढ़ने के लिए "कहानीकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ़ मिलते रहते हैं।" जीवन में घटित होने वाली छोटी छोटी घटनाएँ, समाचार-पत्रों में पढ़ी हुई खबरें, स्टेशनों, गलियों, व्यस्त सड़कों, अदालतों और इतस्ततः बिखरे अगणित दृश्यों को देखकर कहानी लिखने की प्रेरणा मिलती है। मान लीजिए हम किसी अख़बार में हड़ताल की खबर पढ़ते हैं। अचानक मनन करते करते हमारी आँखों के सामने एक चित्र खिंच जाता है। मेहनतकश मज़दूर वर्ग की दर्दनाक जीवन-स्थितियाँ, स्त्री, पुरुषों और बच्चों की दुरवस्था, पग-पग पर उच्चवर्ग द्वारा उनकी भर्त्सना, तिरस्कार और अवहेलना आदि दृश्य एक के बाद एक दृष्टि-पथ के समक्ष बिछ जाते हैं। तत्क्षण हमारा ध्यान खिंच कर किसी प्लॉट पर केन्द्रित हो जाता है और हम उससे भिन्न

किसी और ही असाधारण कहानी का ढाँचा तैयार कर लेते हैं।

एक बिजली-कम्पनी में काम करने वाले व्यक्ति का बच्चा सख्त बीमार है। चिन्तित, परेशान माता-पिता को डॉक्टर बताता है कि अभी तीन दिन तक कोई खतरा नहीं है। पिता निश्चिन्त होकर लेबर यूनियन की मीटिंग में सम्मिलित होने के लिए चला जाता है, किन्तु उसी रात्रि को अचानक बच्चे की स्थिति बिगड़ जाती है। वही डॉक्टर बुलाया जाता है। वह माँ को आश्वस्त करता है कि कोई भय नहीं, केवल एक छोटा सा ऑपरेशन बच्चे की स्थिति में परिवर्तन ला देगा। तत्पश्चात् डाक्टर विद्युत्-बल्ब के प्रकाश में बच्चे के ऊपर झुकता है और औजार से घाव का चिह्न करता है। समीप ही बच्चे की माँ चिंतातुर खड़ी है। किन्तु पलक झाँपते ही भीषण अन्धकार! मकान की सारी बिजलियाँ एक दम बुझ जाती हैं। 'ओह! आप यह क्या कर रही हैं?' डॉक्टर चीखता है। अँधेरे को चीरता हुआ करुण-स्वर सुन पड़ता है 'बिजली मैंने नहीं बुझाई।' सब पागल से स्विच खटखटाते हैं, किन्तु व्यर्थ! चारों ओर अंधकार ही अंधकार, कुछ सूझ नहीं पड़ता। बड़ी कठिनाई से एक मोमबत्ती मिलती है, लेकिन इतनी देर बाद कोई लाभ नहीं, बच्चे की मृत्यु हो जाती है। तभी द्वार पर धम-धम होती है और किसी के भारी जूतों की आवाज नजदीक आती हुई सुन पड़ती है। किवाड़ खुलता है। मृत बालक का पिता विजयोल्लास से मुस्कराता हुआ सामने आता है। 'हमारी जीत हुई', वह जोर से चिल्लाता है 'आज रात नगर में एक भी बत्ती नहीं जल रही है।'

इस प्रकार छोटी छोटी घटनाओं से उत्कृष्ट प्लॉट गढ़ने की प्रेरणा मिलती है। एक किस्सा दूसरे किस्से को जन्म देता है, शनैः शनैः प्लॉट ढूँढ़ना एक मनोरंजक मस्तिष्कीय व्यायाम बन जाता है और अभ्यास हो जाने पर हमारी दृष्टि अपने मतलब की बात टटोल लेती है। कल्पना के योग से मानसिक शक्ति का वर्द्धन होता है और हमारी बुद्धि उत्तरोत्तर तीव्र होती जाती है।

हेनरी जेम्स ने लिखा है, "यदि किसी लेखक की बुद्धि कल्पना-कुशल है तो वह सूक्ष्मतम भावों से जीवन को व्यक्त कर देती है, वह वायु के स्पंदन को भी जीवन प्रदान कर सकती है।" परिश्रम और साधना सफलता का द्योतक है। प्लॉट उल्का-पात के सदृश आकाश से हमारे मस्तिष्क में नहीं उतरते और न ही वे लेखक जो कलम से ज़मीन खोंचते हुए सिर पर हाथ रखे हुए बैठे रहते हैं उसे पाने के अधिकारी होते हैं, वरन् दृश्य-जगत् में चारों ओर इधर-उधर घटनाएँ बिखरी हुई हैं। जो चाहें उनमें से महत्वपूर्ण चीजें बटोर सकते हैं।

## चरित्र-चित्रण

प्लॉट के बाद कहानियों में पात्रों का मानोवैज्ञानिक, सूक्ष्म अंकन अपेक्षित है, प्रत्युत कहीं कहीं तो वह प्लॉट से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। मानवीय संवेदना की सर्वाङ्गीण व्याख्या के लिए पात्रों के भाव, विचार और प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विवेचन, साथ ही उनकी विचार-प्रक्रिया और मनोरागों की निरपेक्ष अभिव्यक्ति उन्हें अंशतः अथवा

सम्यकरूपेण जीवन के निकट ले आती है। पाठक की दृष्टि कभी कभी स्थूल घटनाओं की अपेक्षा पात्रों की अन्तर्वर्त्ती सत्ता पर आ टिकती है। वह व्यक्ति की ऐकान्तिक अन्तश्चेतना को वाह्य-व्यापारों और जीवन के प्रेरक, विधायक तत्त्वों में आरोपित करके बहुत कुछ देखने समझने की चेष्टा करता है। अतएव कुशल कहानीकार को चाहिए कि वह अपने पात्रों में जीवन-तत्त्वों का ऐसा चेतन संगठन प्रस्तुत करे कि उसके पात्र जीती-जागती तसवीर बन जायँ। उनके अणु-परमाणुओं में सादे पर गहरे रंगों को समाविष्ट करके वह उनमें खण्ड चित्रों की भाँति चलचित्रात्मक प्रभाव उत्पन्न करदे, किन्तु इसके लिए उसे परिश्रमपूर्वक वैयक्तिक निरीक्षण की कला को विकसित करना होगा। जीवन की संकुलता में झाँककर मनुष्य के विभिन्न रूपों, उनके स्वभाव, प्रवृत्ति और विशेष गुण-दोषों को हृदयंगम करना होगा। जिन कहानी-लेखकों की चरित्र-चित्रण की ओर विशेष अभिरुचि है उन्हें बिना किसी हिचकिचाहट के जन-समूह में घुसकर विभिन्न व्यक्तियों की चारित्रिक विशेषताओं का मनन पूर्वक गंभीर अध्ययन करना चाहिए और उनकी वाह्य-आकृति, वेष-भूषा आदि का भीतरी वृत्तियों से साम्य स्थापित करके उनकी छोटी छोटी बातों पर गौर करना चाहिए। फिर ऐसा न हो कि वे अपने अनुभवों को यों ही भूल जायँ या उनकी उपेक्षा करदें। उन्हें अपनी मस्तिष्कीय प्रतिक्रियाओं को तत्क्षण कागज पर उतार लेना चाहिए। एकान्त में बैठकर वे मन ही मन अपने अनुभवों को

एकत्र कर लें और लिखते जायँ। पहले वे चुपचाप अपने मित्रों और परिचितों के रेखा-चित्र खीचें, फिर उन्हें बारबार पढ़ें और संशोधित करते जायँ। लिखते हुए उनकी भाषा स्वस्थ, स्वाभाविक और पात्रानुरूप होनी चाहिए।

कहानी में चरित्र-चित्रण उपन्यास की अपेक्षा अधिक सुकोमल और संकेतात्मक होता है। जैसा कि सेमूर हेडन ने लिखा है—"कलम का किंचित सा स्पर्श गहरी रेखाएँ खींच देता है। यदि वे सुसंयत अथवा सुविचारित होते हैं तो वह कुशल कलाकार माना जाता है अन्यथा उसकी कला एक कलंक बन जाती है।" कला के किसी भी क्षेत्र में स्पर्श का इतना बड़ा महत्त्व नहीं है। एक रेखा यदि संगत बैठी तो दस असंगत हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त लेखक की अनुभव-समष्टि कहानी की परिमित-परिधि में इतनी संकुल और घनीभूत होकर प्रकट होती है कि वह अपने पात्रों को जितना ही संवेद्य और विश्वसनीय बना सके उतना ही अच्छा है। सूक्ष्म-रेखाकार अपनी शलाका से जो चमत्कार उत्पन्न करता है वही कथा-लेखक अपनी लेखनी से कर दिखाता है। रेखांकन कला रंगों की सूक्ष्मता में रमती है तो कहानीकार को बुद्धि और मस्तिष्क कुरेद कर जीवन-तत्त्वों के भीतर गहरा पैठना पड़ता है।

हमारी अंतरंग वृत्तियाँ स्वभावतः चैतन्य होने के कारण मानव-चेतना में ही अपने अस्तित्व की जाग्रत अनुभूति पाती हैं। सर्वमान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की

मानसिक प्रक्रिया, भिन्न-भिन्न उद्वेग, प्रच्छन्न अभिलाषाएँ और मनोवृत्तियाँ प्रायः बहुत कुछ एकसी हुआ करती हैं। कहानियों को पढ़ते हुए पात्रों की वृत्तियों के साथ हमारा तादात्म्य स्थापित हो जाता है और हमें लगता है जैसे वे हमारे ही अंगी और परिचित हों। हम उनके सुख-दुःखों में समान रूप से भाग लेते हैं और उनके जीवन में अपने ही जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं, "साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस आवेग में पिता के मनोवेगों को चित्रित करना और तदनुकूल उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करना, कहानी को आकर्षक बना सकता है। बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नहीं होता, उस में कहीं देवता अवश्य छिपा होता है,—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका-लेखक का काम है। विपत्ति पर विपत्ति पड़ने से मनुष्य कितना दिलेर हो जाता है,—यहाँ तक कि वह बड़े से बड़े संकट का सामना करने के लिये ताल ठोंक कर तैयार हो जाता है, उसकी समस्त दुर्बलताएँ भाग जाती हैं, उसके हृदय के किसी गुप्त स्थान में छिपे हुए जौहर निकल आते हैं और हमें चकित कर देते हैं; यह मनोवैज्ञानिक सत्य है।........जीवन में ऐसी समस्याएँ नित्य ही उपस्थित होती रहती हैं और उनसे पैदा होने वाला द्वन्द्व आख्यायिका को चमका देता है। सत्यवादी पिता को मालूम होता है कि उसके पुत्र ने हत्या की है। वह उसे न्याय की वेदी पर बलिदान कर दे, या

अपने जीवन-सिद्धान्तों की हत्या कर डाले ? कितना भीषण द्वन्द्व है। पश्चात्ताप ऐसे द्वन्द्वों का अखण्ड स्रोत है। एक भाई ने अपने दूसरे भाई की सम्पत्ति छल-कपट से अपहरण करली है। उसे भिक्षा माँगते देख कर क्या छली भाई को जरा भी पश्चात्ताप न होगा ? अगर ऐसा न हो तो वह मनुष्य नहीं है।"

निःसन्देह, ऐसे मनोगत भाव और द्वन्द्व हमारे हृदय को छूते हैं। कहानीकार को इस द्वन्द्व का गंभीर ज्ञान अपेक्षित है। वह वार्तालाप, क्रिया और विभिन्न चेष्टाओं द्वारा अपने पात्रों का यथार्थ और आकर्षक चित्रण प्रस्तुत कर सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ स्वभावगत विशेषताओं को आरोपित करके वह अपने पात्रों की मनोवृत्तियों को भी प्रयोग में ला सकता है। हम प्रायः प्रतिदिन ऐसे व्यक्तियों से मिलते हैं जिन्हें सिर खुजाने या पैर हिलाने की आदत होती है। किसी को उँगली चटकाना या सीटी बजाना बहुत भाता है। कुछ लोगों को कोई कोई शब्द, मुहावरे और वाक्य इतने मुँह पर चढ़े रहते हैं कि वे बात-बात में उसका प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कहानीकार अपने पात्रों में कुछ विशिष्ट मनोवृत्तियों को आरोपित करके उन्हें और भी सजीव एवं विश्वसनीय बना सकता है।

### वार्त्तालाप

मनुष्य में अपने विचारों को दूसरों के समक्ष व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। वह वार्त्तालाप द्वारा अपनी और दूसरे की बात कहने-सुनने को लालायित रहता है। कहानियों के पात्र बहुधा अपनी सजग स्पष्ट और गंभीर वार्त्ता-

चीत से हमारे मन में घर कर लेते हैं। उनका अपना व्यक्तित्व हमारे सम्मुख फड़क जाता है और भीतरी वृत्तियाँ सजीव होकर उभर पड़ती हैं। इससे वर्णित विषय तो गतिमान् होता ही है, पात्रों के मनोवेगों, अभिरुचियों और उनके अंतरंग मार्मिक स्तरों को छूने का भी सुअवसर मिल जाता है।

जिस प्रकार प्लॉट और चरित्र-चित्रण प्रतिपाद्य विषय को आगे बढ़ाते हैं, उसी प्रकार वार्त्तालाप भी घटनाओं को गतिशील, वातावरण को रोचक, चरित्र-चित्रण को प्रखर और कहानी के व्याख्यात्मक तत्त्वों का निर्माण करता है। वार्त्तालाप में वे ही प्रसंग, वे ही बातें और वे ही विचार व्यक्त करने चाहिए जो प्लॉट के विकास में सहायक हों और चरित्रों के गुप्त मनोभावों का निदर्शन करें। एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी-लेखक ने एक बार लिखा था, "किसी भी कहानी में यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि अमुक स्त्री या अमुक आदमी झगड़ालू और कर्कश है। उसे सामने लाकर खड़ा कर दो और बकने-झकने दो।" इस प्रकार अनेक विशिष्ट पात्रों के वार्त्तालाप से ही उन की मनोवृत्तियों का अध्ययन हो जाता है। क्रोध, घृणा, द्वेष, हर्ष-शोक, प्रेम-अनुराग, हँसी-चुहल आदि मानव-मन के प्रच्छन्न पहलू उनकी वाणी द्वारा व्यक्त हो जाते हैं और हम उन की व्यक्तिगत विशेषताओं को हृदयंगम करने में सफल होते हैं। निम्न वार्त्तालाप में प्रेम, कर्तव्य और व्यथा की छटपटाहट का कैसा सुन्दर मर्मस्पर्शी चित्रण है—

उषा के आलोक में सभा-मण्डप दर्शकों से भर गया।

बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार करते हुए कहा—'वध करो !'

राजा ने सब से सहमत होकर आज्ञा दी—'प्राण-दण्ड'। मधूलिका बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—'मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।' वह चुप रही।

राजा ने कहा—'मेरी निज की जितनी खेती है मैं सब तुझे देता हूँ।' मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—'मुझे कुछ न चाहिए।' अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—'नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा, माँग ले।'

'तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले'—कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

( 'पुरस्कार'—प्रसाद )

वार्त्तालाप सरल, सजीव और आकर्षक होना चाहिए, साथ ही वह ऐसा न हो जो जीवन से दूर जा पड़े। श्रेष्ठ कलाकार वही है जो प्रसंगानुकूल चलित परिस्थितियों एवं पात्रों के अनुरूप वार्त्तालाप प्रस्तुत करता है—हाँ, उसे यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि उसका वार्त्तालाप यथार्थ और स्वाभाविक होता हुआ भी इतना साधारण और निम्न-कोटि का न हो जो गँवारू और सर्वथा कलाहीन हो जाए।

## भाषा और शैली

कहानी लिखने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि समस्त शक्ति भाषा और शैली पर ही केन्द्रित कर

यदि विचार-गांभीर्य न होगा तो भाषा और शैली की बाह्य-चारुता निरर्थक है, वरन् शब्द, अलंकार और उपमाओं से लदी हुई भाषा अस्वाभाविक और दुरूह हो जायगी।

कहानी-लेखक अपनी मनोवृत्तियों के अनुरूप आत्माभिव्यंजन की इच्छा से प्रेरित होकर भाषा का निर्माण करता है। यदि उसकी कल्पना और कला में जीवन की व्याख्या निहित है तो उसका महत्त्व भाषा की शक्ति में केन्द्रित होकर उसके प्रभाव को द्विगुणित कर देता है। वह उसके भावों और विचारों की वाहक होकर उसके प्रतिपादन की पद्धति पर आश्रित रहती है। न केवल भाषा में उसके भाव प्रतिफलित होते हैं, प्रत्युत भावों के अनुरूप उसकी भाषा भी इस विन्दु से सुदूर विन्दुओं की ओर अग्रसर होती रहती है और विषय को उपयोगी बनाती चलती है।

कोई भी दक्ष लेखक भाषा का क्रीतदास नहीं, वरन् भाषा ही उसकी वशवर्त्तिनी होती है। उसकी सूझ, उसकी गंभीरता, विचार-अनुक्रम और मास्तिष्कीय उद्भावनाओं की अमिट छाप उसकी भाषा और शैली पर स्पष्ट अंकित हो जाती है। अनजाने ही वह लिखता जाता है और भाषा चुपके चुपके उसकी सृजन-शक्ति और प्रतिभा के अनुकूल ढलती चलती है। बेकन ( Bacon ) ने लिखा है—

"अच्छे लेखक अधिक नहीं पढ़ते, अपितु जो पढ़ते हैं उसे पचाते अधिक हैं। व्यापक अध्ययन, हृदय और मस्तिष्क में ओत-प्रोत होकर, भावी साहित्य-साधना में सहायक होता है, किन्तु

जिन्हें हम पढ़ते हैं उनका अन्ध-अनुवर्त्ती होना हमारी बौद्धिक हीनता का द्योतक है।"

लेखक इतस्ततः पढ़कर और अध्ययन करके ही तत्कालीन विचार-धारा को अपने कृतित्त्व में उतारता है, केवल उसका लिखने का ढंग मौलिक होना चाहिए। अपनी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को वह भाषा के औचित्य और सृजन की अदम्य शक्ति से परिपूरित कर सकता है।

## कहानी के उदात्त-तत्त्व

प्लॉट, चरित्र-चित्रण, वार्त्तालाप और शैली के प्रमुख अंगों के अतिरिक्त कहानी में कुछ ऐसे उदात्त तत्त्व भी निहित होने चाहिए जो पाठक में सद्भाव और उदात्त-भावना उत्पन्न करदें। कहानी समाप्त करते ही वास्तविक परिस्थितियों की गहराइयों में डूबी हुई जीवन के सत्य की ऐसी जाज्वल्यमान रेखाएं उसके समक्ष विकीर्ण हो जायं, जिसमें वह अंतःप्रेरणा की शाश्वत शक्ति को उद्बुद्ध कर सके।

कहानी मनुष्य के जीवन की व्याख्या है और उसका मूल आधार मनोविज्ञान है। वह जीवन के द्वन्द्वात्मक सत्य, मनुष्य के मन की ग्रन्थियों, उसके प्रच्छन्न भाव, मानसिक-ऊहापोह, उलझन, अंतर्संघर्ष एवं विकारग्रस्त कल्पनाओं को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर उघाड़ उघाड़ कर दर्शाती है। जीवन-रहस्य के सहस्रों परमाणु उसकी परिधि में सिमटे रहते हैं, कथा-लेखक को उन्हें ठीक से सँवारने-सजाने की आवश्यकता है। कहानी में निहित उदात्त-विचारों से आत्म-तुष्टि तो होती ही है, साथ ही

जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है।

कहना न होगा—कहानी को उदात्त बनाने के लिए उसका सर्वाङ्ग-गठन अनिवार्य है। जैसा उसका आरम्भ प्रभावात्मक हो वैसा ही उसका अन्त भी स्वस्थ और सुन्दर होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कहानी में घटना-क्रम, परिस्थितियों का विश्लेषण, भाव-व्यंजना, उद्देश्य आदि भी ऐसा होना चाहिए जो कहानी के प्रसार-क्रम को शिथिल न होने दे।

   

कहानी साहित्य की आधार-शिला है। उसमें सदैव से ही अर्वाचीन जीवन की झाँकी मिलती रही है, यही कारण है कि प्रत्येक देश की प्रत्येक जाति में, चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, कहानियों का प्रचलन रहा है।

विश्व-कथा-साहित्य में भारतीय-साहित्य के ऋग्वेद, उपनिषद, सांख्य आदि के दृष्टांत, उपाख्यान तथा चीन में प्रस्तर-खण्डों पर खुदी प्राचीन गाथाओं को छोड़कर ग्रीक और लैटिन कहानियाँ ही सबसे प्राचीन मानी जाती हैं, जिन्होंने सारे यूरोप में कहानी-साहित्य का सूत्रपात किया है। ईसा से चार शताब्दी पूर्व हिरोडोटस की पुस्तक में ईसप की दिलचस्प कहानियों का उल्लेख मिलता है, जो बहुत कुछ भारतीय कहानियों का किंचित् परिवर्त्तित रूप ही कही जा सकती हैं।

चौदहवीं शताब्दी में इटली में बोकेशियो की कहानियाँ पढ़कर इस ओर लोगों की अत्यधिक अभिरुचि हुई। उसकी

अनेक कहानियाँ फ्रैंच भाषा में अनूदित हुईं और उनका इतस्ततः प्रचार किया गया। शनैः शनैः इन्हीं अनुवादों से मौलिक कहानियाँ लिखने की भी प्रेरणा प्राप्त हुई।

हमारे साहित्य में आधुनिक लघु-कथाएँ लिखने की प्रथा पश्चिम से आई है, यों यह बात नहीं कि हमारे यहाँ अपना कथा-साहित्य था ही नहीं। संस्कृत में हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के रोचक आख्यानों के अतिरिक्त 'हितोपदेश', 'पंचतन्त्र', 'कथा-सरित्सागर', 'बृहत्कथा मंजरी', 'दशकुमार चरितम्', 'कादम्बरी' आदि स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थों की भी रचना हुई, जिनका प्रभाव न केवल भारतीय भाषाओं पर ही पड़ा, वरन् मध्य एशिया के अन्य देशों की भाषाओं पर भी देखा जाता है।

हिन्दी में वर्त्तमान् छोटी कहानी अंग्रेजी से बँगला और बँगला से हिन्दी में आई है, वैसे यहाँ 'रानी केतकी की कहानी' 'नासिकेतोपाख्यान' आदि कुछ पुराने ढर्रे की कहानियाँ पहले से ही लिखी जाती रही हैं, पर उन कहानियों में और आज की कहानियों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

चमत्कारपूर्ण, विस्मयोद्बोधक प्रणाली से किसी उपदेश-विशेष की योजना अथवा किसी न किसी रूप में मजेदार किस्से कहानी गढ़कर पाठकों का मनोरंजन करना उन पुरानी कहानियों की विशेषता थी। उनमें अद्भुत तत्त्व का अंश अधिक और मानवीय भावनाओं का विलोड़न कम था। जीवन अपनी स्थूलता में जिन तथ्यों को उभार कर रखता है, उनसे परे

आन्तरिक परिस्थितियों और पहलुओं की व्याख्या न की गई थी। किन्तु आज की कहानी जीवन और जीवन-मर्म की विश्लेषक है। यह महत्त्वपूर्ण समस्याओं को हल करने का एक महान् साधन बन गई है।

उन्नीसवीं शताब्दी से विश्व-साहित्य में कहानियों का विशेष प्रचलन हुआ है। रूस, फ्रांस, इंगलैंड आदि के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक डॉस्टॉवस्की, टॉलस्टॉय, तुर्गनेव, चेखव, मैक्सिम गोर्की, बालज़ाक, मोपाँसा, गाई-डो०, पियेरलोटी, डिकेन्स, हार्डी बेनट, किपलिंग, शार्लेट यंट, ब्रांटी आदि ने युगांतर उपस्थित कर दिया और इन्हीं के अनुकरण पर छोटी कहानियाँ ( Short Story ) लिखी जाने लगीं।

हिन्दी में प्रेमचन्द जब से कहानी साहित्य में अवतीर्ण हुए तभी से कहानी की धारा बदली। पाश्चात्य कहानियों के सदृश ही उन्होंने जीवन की यथार्थ परोक्ष अभिव्यक्ति को कला में रूपायित किया और चेतना को व्यापक बनाकर उसकी स्थायी आंतरिक शक्तियों को समझा।

प्रेमचन्द की कहानियाँ महत्त्वपूर्ण जीवन-विश्लेषक चित्र हैं, जिनमें समाज के बूर्जुआ ढाँचे के नीचे मध्यमवर्ग, निम्नवर्ग की द्वन्द्वात्मक जीवन-परिस्थितियों के छोटे छोटे करुण दृश्य अंकित किए गए हैं। बहुत ही मार्मिक, व्यंजक और हृदय को हिला देने वाले गरीबों, बेकसों, किसान और निर्धन जनता की आशा-आकांक्षाओं के टूटने उभरने के सजीव, सुन्दर दृश्य-चित्र हैं जो

पाठकों को मुग्ध कर लेते हैं। कहानियों में चलते-फिरते नर-नारी, बालक-बालिकाएँ, वृद्ध-तरुण, युवक-युवतियाँ अपने ही अंगी और सहयोगी से जान पड़ते हैं। अपनी बातचीत, रहन-सहन, रंग-ढंग, चाल-ढाल, रुचि-भावनाएँ एवं स्वभाव की विशेष प्रवृत्तियों द्वारा वे हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, जिससे हमारी राग-विराग की वृत्तियाँ उनसे इतना सामंजस्य स्थापित कर लेती हैं कि हम उन्हें आजन्म भूल नहीं पाते। 'प्रेरणा' कहानी में ऊधमी, शैतान सूर्यप्रकाश की प्रारम्भिक मनःस्थिति, फिर शनैः शनैः परिस्थितियों-वश उसके जीवन और स्वभाव की कायापलट आदि सुन्दर ढंग से वर्णित है। ऐसी घटनाएँ नित्यप्रति जीवन में घटित होती रहती हैं।

प्रेमचन्द के पश्चात् जयशंकर प्रसाद ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से कथा-साहित्य को परिपुष्ट किया। उन्होंने अंतरंग-बहिरंग, निकट और दूरी—दोनों छोरों से जीवन को समझने की चेष्टा की। प्रस्तुत पुस्तक में उद्धृत प्रसाद जी की 'पुरस्कार' कहानी कथानक, टेकनीक, कला तीनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट बन पड़ी है। उसकी प्रमुख चरित्र-नायिका मधूलिका अपनी विवश परिस्थितियों से हैरान है। उसके कोमल हृदय को कचोटने वाला प्रेम और कर्तव्य का मार्मिक द्वन्द्व कहानी में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु वह सुकुमार, भावुक नारी इतनी सहिष्णु, दृढ़ और कर्तव्य-परायण है कि देश-प्रेम के ऊपर वह अपने प्रेमी को न्यौछावर कर देती है और साथ ही स्वयं भी अपना जीवन अर्पण कर देती है।

चन्द्रधर गुलेरी की सुप्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में संवेदना की गहरी कचोट, मानसिक संवेद्य तथ्यों से उभरी स्मृति-विस्मृति की अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण, साथ ही कल्पना की परिष्कृति एवं अभिरुचि की पूर्ण समन्विति दृष्टिगत होती है।

प्रेमचन्द की औपन्यासिक प्रवृत्तियों से भिन्न कहानी में मनोविश्लेषणात्मक भावों की व्याख्या जैनेन्द्र कुमार से शुरू हुई। मानव-मन की अज्ञात एषणाएँ, उसके अभ्यंतर में प्रति पल उठते हुए विचारों, उद्वेगों और असामान्य चिन्तनाओं को नवीन मानवीय संदर्भों से परखकर बौद्धिक रूप दे दिया गया। इस पुस्तक में उद्धृत 'अपना-पराया' कहानी में व्यंजना इतनी सधी हुई है कि वह मानवीय-भावनाओं की सचाई का विद्रूप व्यक्त करती है। प्रायः हमारी बुद्धि अपने-पराये में भेद किया करती है। जिसे हम पराया समझते हैं, वही अपना बनकर हमारे जीवन का अभिन्न अंग हो जाता है।

सराय में विश्राम करने वाला सिपाही जब गाढ़ निद्रा में किसी बच्चे की चीख से जाग उठता है तो उसे बच्चे और उसकी मा से चिढ़ हो जाती है। वह उनकी असहायावस्था में अर्द्ध रात्रि को ही उन्हें सराय से बाहर निकालने को सन्नद्ध हो जाता है, किन्तु यह विदित होते ही कि वे उसकी स्त्री और पुत्र हैं सब कुछ कैसे उसकी नजरों में बदल जाता है। पराये से अपने का बोध होते ही उसमें कैसा अभूतपूर्व परिवर्त्तन होता है—इन्हीं सूक्ष्म मानव संस्कारों की व्याख्या इस कहानी का उद्देश्य है।

[illegible]

वृन्दावनलाल वर्मा की 'शरणागत' कहानी बुन्देला राजपूतों की शरणागत-वत्सलता का दिग्दर्शन कराती है और चन्द्रगुप्त विद्यालंकर की 'गोरा' कहानी एक आश्रित बछड़े की प्राण-रक्षा के लिए उसके मालिक की करुण बलिदान-कथा को लेकर चलती है। दोनों में एक ही भाव, एक ही मन्तव्य व्यक्त किया गया है, लेकिन एक में कर्त्तव्य अधिक है और एक में स्नेह-सौहार्द्र। इसके विपरीत मन्मथनाथ गुप्त की कहानी 'मर्दुमखोर' सामाजिक अनाचार से त्रस्त मानव का विकृत रूप प्रस्तुत करती है। हम जिन्हें बुरा और हेय समझते हैं, वे क्यों ऐसे होते हैं, कौनसी परिस्थितियाँ, कौन से दारुण आघात उनकी मनःस्थिति और जीवन-क्रम को बदल देते हैं—इसका हम अनुसन्धान नहीं करते। 'मर्दुमखोर' सामाजिक अभिशापों से कुचली हुई मनुष्यता की दर्दनाक तस्वीर है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की 'गोखरू' कहानी में एक मध्यमवर्गीय नारी के अंतर में घुमड़ते हुए उस कुत्सित मोह का विश्लेषण है जो उसकी समस्त कोमल भावनाओं को बरबस जकड़ कर उसे नितांत विवेकशून्य बना देता है। अपने प्रिय आभूषण 'गोखरू' के प्रति उसके हृदय का सहज लगाव इतना गहरा है कि वह किसी प्रकार चेष्टा करने पर भी उसे अपने मन-प्राणों से उतार नहीं पाती, यहाँ तक कि उसका प्रलोभन उसे अंधा बना देता है। उसके हृदय में अहर्निश तड़प सी रहती है, आत्मा छटपटाती है और उसका यह लगाव सर्वोपरि होकर उसके समस्त जीवन को आच्छन्न कर लेता है।

अन्त में उसके जीवन की यह दारुण, किन्तु अनिवार्य घटना जब उसकी एकमात्र पुत्री के प्राणों का भी अपहरण कर लेती है तो उसके हृदय पर गहरी ठेस पहुँचती है। लेकिन गोखरू के प्रति उसका मोह तब भी कम नहीं होता। वह मृत लड़की के हाथों में से उतार कर उन्हें छिपा लेती है। कुछ दिन बाद मनन करते करते अनायास रात्रि की नीरवता में उसकी चेतना लौटती है, दिल में कसक होती है, पश्चात्ताप की मर्मांतक पीड़ा जो उसकी दृष्टि को प्रखर बना देती है उसे सोचने को बाध्य करती है, 'क्या वही अपनी पुत्री की घातक नहीं ?' इतने दिनों से भीतर ही भीतर घुमड़ते कुत्सित मोह को चीर कर वह उन्हें आवेश में दे डालती है, किन्तु देने के बावजूद भी क्या वह अपने संस्कार से मुक्त हो पाती है ? शायद नहीं। जीवन में कितने ही ऐसे लगाव हैं जो संस्कार बन कर हमारे भीतर समा जाते हैं और जिनसे हम आजन्म मुक्त नहीं हो पाते।

विष्णु प्रभाकर की 'नाग-फाँस' कहानी में नारी की नैसर्गिक चाह को एक दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया गया है। माँ का सन्तति के प्रति मोह स्वाभाविक है, किन्तु वही दुर्दम्य बन कर माँ की सदिच्छाओं को विरूप कर देता है।

अन्ततः जीवन-प्रवाह के सभी कर्म सोद्देश्य नहीं होते। कभी कभी अज्ञात प्रेरणाएँ हमारी मनःशक्ति का परिचालन करती हैं; इच्छाओं के मूल में निहित सूक्ष्म राग-तन्तु जब प्रच्छन्न रूप से कार्य सम्पादित करते हैं तो वे सर्वप्रथम अभीप्सित की ओर उन्मुख होते हैं। 'नाग-फाँस' में माँ की मनःस्थिति भी

कुछ ऐसी ही है। पुत्र का मोह उसके भीतर सिमटकर सघन हो गया है, अन्य पुत्रों की भाँति उससे बिछुड़ने की आशंका उसे भयभीत किए रहती है, अतएव ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में वह उस कार्य में प्रवृत्त होती है जो उसके अवचेतन मन की अव्यक्त चेष्टा का प्रतीक है। इसे हम उसका स्वार्थ कह सकते हैं, किन्तु वही क्या विघटित व्यवस्थाओं से उत्पन्न उसकी जड़ित विवशता नहीं है ?

राङ्गेय राघव की 'नई जिन्दगी के लिए' कहानी एक ऐसे परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण करती है जो कन्याएँ ही कन्याएँ उत्पन्न हो जाने से त्रस्त है। आशा-निराशा से कलपती पिता की व्यथित आत्मा, जो उसे निर्मम और भाव शून्य बना देती है, माता की मूक मनोव्यथा जो उसे गहरी वेदना और करुणा से भर देती है; साथ ही निरीह, भोली बच्चियों की विवश दीनता, जो उन्हें भयभीत और अशान्त किए रहती है आदि मनोवैज्ञानिक पद्धति से वर्णित की गई है। क्लाइमेक्स पर आकर कहानी और भी प्रखर हो जाती है। अन्तिम दृश्य में फिर वही वज्राघात—दसवीं कन्या का जन्म ! घर का वीभत्स वातावरण और पिता का देहलीज़ पर सिर फोड़ना दैव के विधान की क्रूर विडम्बना को मानों साकार कर रहा है।

रावी की 'अन्तम्य' कहानी इतर देशीय एवं अतीत मानव-जीवन की समस्याओं को लेकर सर्वथा नवीन रूप में हमारे सामने आती है। कहानी में कल्पना प्रच्छन्न और सत्य प्रत्यक्ष है, जो कहानीकार की सृजनात्मक प्रतिभा और चिंतन का दिग्दर्शन कराके एक गहरी संवेदना की अमिट छाप हमारे हृदय पर अंकित कर जाती है।

सुभद्राकुमारी चौहान की 'बड़े घर की बात', होमवती की

'अन्तिम मिलन' और चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की 'मर्द' कहा
नीनों ही भारतीय नारी की दुरवस्था की द्योतक हैं। ए
रूढ़ियों, जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं और भारतीय समा
संकीर्णता में जकड़ी तथा पुरुषत्व के दम्भ से कुचली
कितनी उपेक्षित और प्रताड़ित है, इसका इन कहानि
सुन्दर निरूपण है। नारी के दुःख-दर्द का जागरूक चित्र
करुण और मर्मस्पर्शी हो उठा है।

इसके विपरीत कमला चौधरी की 'टेक की रक्षा'
अतीत की पौराणिक गाथा को लेकर आधुनिक पद्धति से
गई है। ब्राह्मण परिवार की दुर्दशा पढ़कर आज के
परिवारों के चित्र नज़रों के सामने से गुज़रने लगते हैं

कमला त्रिवेणीशंकर की कहानी 'क्रान्तिकारी' में
भाई के सात्त्विक, पावन-प्रेम की अनूठी व्यंजना, जो
द्वारा पति की सुविधाओं की उपेक्षा कराती है, लेकि
परिस्थिति-सृजन-सामर्थ्य को दर्शाती हुई स्फूर्तिदायक प्रेर
में प्रकट होती है, जो पाठक में नवीन चेतना का
करती है।

अच्छी
कहानियाँ

सप्रेम भेंट
श्रीमती मायादेवी
पत्नि स्व० श्री राम स्वरूप धीमान्

प्रेमचन्द

# प्रेरणा

मेरी कक्षा में सूर्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, वल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने उद्योगी बालकों को छेड़ने और रुलाने में ही उसे आनन्द आता था। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचता, ऐसे-ऐसे फंदे डालता, ऐसे-ऐसे बाँधनू बांधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फौजदारों की एक फौज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाता की आज्ञा टल जाय, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म की अवज्ञा कर सके। स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे थर-थर काँपते थे। इंस्पेक्टर का मुआइना होने वाला था, मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आध घण्टा पहले आ जायें। मतलब यह था कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ जरूरी बातें बता दी जायें, मगर दस बज गये, इंस्पेक्टर साहब आकर बैठ गये, और मदरसे में एक लड़का भी नहीं। ग्यारह बजे, सब छात्र इस तरह निकल पड़े, जैसे कोई

पिंजरा खोल दिया गया हो। इंस्पेक्टर साहब ने कैफ़ियत में लिखा—डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए, और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी, मगर बहुत पूँछ-ताछ करने पर भी किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कालेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी। मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल जैसे मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम न करती कि शैतान को कैसे सन्मार्ग पर लायें। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई; पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा-विधि के अनुसार मैं दंडनीति का पक्षपाती न था, मगर यहाँ हम नीति से केवल इसलिए विरक्त थे कि कहीं उपचार रोग से भी असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्दंड बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था, और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता, तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें से एक बड़ा-सा मेंढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लास में

शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाये नीचे मुस्करा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ था। एक दिन मैंने गुस्से से कहा—तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा—आप मेरे पास होने की चिंता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूं और अबकी भी हूँगा।

'असम्भव!'

'असम्भव सम्भव हो जायगा!'

मैं साश्चर्य उसका मुँह देखने लगा। जहीन से जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ाकर निकल जायगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम लिया; मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों ही में उसके नम्बर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था; मगर उसके उत्तर-पत्रों को क्या करता! लिपि में इतना भेद न था जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गये, मगर उन्हें भी

पिंजरा खोल दिया गया हो। इंस्पेक्टर साहब ने कैफ़ियत में लिखा—डिसिप्लिन बहुत ख़राब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए, और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी, मगर बहुत पूँछ-ताछ करने पर भी किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कालेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी। मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल जैसे मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम न करती कि शैतान को कैसे सन्मार्ग पर लावें। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई; पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा-विधि के अनुसार मैं दंडनीति का पक्षपाती न था, मगर यहाँ हम नीति से केवल इसलिए विरक्त थे कि कहीं उपचार रोग से भी असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्दंड बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था, और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता, तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें से एक बड़ा-सा मेंढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लास में

शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाये नीचे मुस्करा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ था। एक दिन मैंने गुस्से से कहा—तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा—आप मेरे पास होने की चिंता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूं और अबकी भी हूँगा।

'असम्भव!'

'असम्भव सम्भव हो जायगा!'

मैं साश्चर्य उसका मुँह देखने लगा। जहीन से जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ाकर निकल जायगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम लिया; मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों ही में उसके नम्बर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था; मगर उसके उत्तर-पत्रों को क्या करता! लिपि में इतना भेद न था जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गये, मगर उन्हें भी

जान-बूझकर गलती निकलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव ही से निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्यप्रकाश के विषय में ज़रा भी चिंतित न पाता था। मानो ऐसे लड़कों का स्कूल में आना कोई नई बात नहीं; मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था। अगर यही ढंग रहे, तो एक दिन वह या तो जेल में होगा, या पागलखाने में।

( २ )

इसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल था, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गई थी, मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ; क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे रास्ते का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे विदाई की दावत दी, और सबके सब स्टेशन तक पहुँचाने आये। उस वक्त सभी लड़के आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने आँसुओं को न रोक सका। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगी थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो-चार बातें कर लूँ। शायद वह भी मुझसे कुछ कहना चाहता था; मगर न मैंने पहले बातें कीं, न उसने; हालाँकि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षम्य थी, पर मेरा अवरोध अक्षम्य था। संभव था, उस करुणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिल पर असर कर जातीं; मगर इन्हीं खोये हुए अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंदगति से चली। लड़के कई कदम तक उसके

साथ दौड़े। मैं खिड़की के बाहर फिर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नजर आये। फिर वह रेखाएँ आकाश में विलीन हो गईं; मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया, वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उसके गले मिलने के लिये तड़प उठा।

नये स्थान की नई चिंताओं ने बहुत जल्द मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनों की याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसी का कोई खत आया न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है? संयोग से मुझे इंग्लैंड में विद्याभ्यास करनेका अवसर मिल गया। तीन साल लग गये। वहां से लौटा, तो एक कालेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिलकुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर न उड़ी थीं; किन्तु पदलिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षा-मंत्री से रब्त-जब्त पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे; मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर सवार वह थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनैतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया। मुझ पर जा-बेजा आक्रमण होने लगे। मैं सिद्धान्त रूप से अनिवार्य शिक्षा का विरोधी हूँ। मेरा विचार है कि हर एक

मनुष्य को उन विषयों में ज्यादा स्वाधीनता होनी चाहिए, जिनका उनसे निज का सम्बन्ध है। मेरा विचार है कि यूरोप में अनिवार्य शिक्षा की जरूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता, पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्व है। वहाँ किसी काम की प्रेरणा, आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। जिंदगी की जरूरतें ज्यादा हैं; इसलिये जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-से-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते है। इसकी जगह कि वह मद का त्याग करके एक शिलिंग रोज की बचत कर लें, वे अपने कमसिन बच्चे को एक शिलिंग की मज़दूरी करने के लिए दबायेंगे। भारतीय जीवन में सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चों से मजदूरी नहीं कराते जब तक कि परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्र से दरिद्र हिन्दुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाय। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा; बल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शील का एक शृंगार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिए कि वह मजबूर है। ऐसी दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि में न्याय-संगत नहीं है। इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। अर्द्ध शिक्षित और अल्प वेतन पानेवाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं रख सकते कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि चार-

पांच-वर्ष में बालक को अक्षर का ज्ञान हो जायगा। मैं इसे पर्वत खोद कर चुहिया निकालने के तुल्य समझता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मसला एक महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान एक महीने में प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यावस्था में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर ख़ामख़्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ। मदरसे के बाहर रह कर उसे स्वच्छ वायु तो मिलती, प्राकृतिक अनुभव तो होते। पाठशाला में बंद करके तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं; इसलिए जब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर साहब ने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था। मिनिस्टर साहब की और मेरी वह ले दे शुरू हो हुई कि कुछ न पूँछिए। व्यक्तिगत आक्षेप किये जाने लगे। मैं गरीब की बीबी था, मुझे ही सबकी भाभी बनना पड़ा। मुझे देश-द्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकर-शाही का गुलाम कहा गया। मेरे कालेज में ज़रा सी भी कोई बात होती तो कौंसिल में मुझ पर वर्षा होने लगती। मैंने एक चपरासी को पृथक् किया। सारी कौंसिल पंजे झाड़ कर मेरे पीछे पड़ गई। आखिर मिनिस्टर को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिये असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे

शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लिये दुस्साध्य हो गया। मुझे अपने कालेज के आंतरिक संगठन का भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परीक्षा में भेजा गया, अमुक के बदले अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई, अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती, इस तरह के सारहीन आक्षेपों ने मेरे नाक में दम कर दिया था। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया। मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम-से-कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे; मगर उन्होंने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा, और मुझे कई साल की भक्ति का यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गए थे, उन्हीं दिनों पत्नी का देहान्त हो गया। अंतिम दर्शन भी न कर सका। संध्या समय नदी तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा, तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदय की गति बन्द हो गई थी। इस आघात ने कमर तोड़ दी। माता के प्रसाद और आशीर्वाद से बड़े-बड़े महान् पुरुष कृतार्थ हो गए हैं। मैं जो कुछ हुआ, पत्नी के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ; वह मेरे भाग्य की विधात्री थी। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उनके माधुर्य में तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटि संकुचित देखी हो। निराश होना तो वह जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य भी निराश हो गए

हैं; पर वह अपने धैर्य और शान्ति से अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। उन्हें विश्वास था कि मैं अपने पति के जीवन-काल में मरूँगी और वही हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था। जब यह अवलम्ब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है, सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। वह लगन गायब हो गई। मैं संसार से विरक्त हो गया। और एकांतवास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके एक छोटे-से गांव में जा बसा। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे एक छोटा-सा घर बना लिया और उसी में रहने लगा।

गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं अंगरेजी अच्छी लिखता हूँ, दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूँ, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ; मगर इन गुणों में एक भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता, तो एक बात थी। हालांकि एक सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखना अचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देखकर कहा—आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गये, बोला—आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है?

'जी, हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूं।'

'बारह-तेरह वर्ष गए।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा—अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं; पर लड़के उन्हें हमेशा याद रखते हैं।

मैंने उसी विनोद के भाव से कहा—तुम जैसे लड़कों को भूलना असम्भव है।

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर में कहा—उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लिए सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंगलैंड गये, तो मैंने आपके लिए बधाई का पत्र लिखा; पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हुए, मैं इंगलैण्ड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आप

के लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा, तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहात में चले गए हैं। इस जिले में आए हुए मुझे एक वर्ष से अधिक हुआ; पर इसका जरा भी अनुमान न था कि आप यहाँ एकान्त-सेवन कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता है। इतनी ही अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश की उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यमय आनन्द हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता, तो भी इससे अधिक आनन्द न होता। मैं उसे अपने झोंपड़े में लाया और अपनी रामकहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा—तो यह कहिये कि आप अपने ही एक भाई विश्वासघात के शिकार हुए। मेरा अनुभव तो अभी बहुत कम है; मगर इतने ही दिनों में मुझे मालूम हो गया है, कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहब से भेंट हुई, तो पूछूँगा, कि यही आपका धर्म था?

मैंने जवाब दिया—भाई, उनका दोष नहीं। संभव है, इस दशा में मैं भी वही करता, जो उन्होंने किया। मुझे अपनी स्वार्थलिप्सा की सजा मिल गई, और उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। बनावट नहीं, सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है, वह और कहीं न थी। इस एकान्त-जीवन में मुझे जीवन के तत्त्वों का वह ज्ञान हुआ, जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह संभव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाटकर और यूरप के विद्यालयों की शरण जाकर भी

को न मिटा सका; बल्कि यह रोग दिन-दिन और भी असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पांव रखे बगैर छत की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। सम्पत्ति की अटटालिका तक पहुँचने में दूसरों की जिंदगी ही जीनों का काम देती है। आप उन्हें कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं। वहां सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंस्त्र जंतुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षा में ही लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोप और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव की लालसा है।

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे की ओर गौर से देखा। कपट मुसकान की जगह ग्लानि का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से इतने निराश हो गये थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई। एक संपन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरन्त बात पलटकर कहा—मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह काया-पलट कैसे हुई। तुम्हारी शरारतों को याद करता हूँ तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी देवता के वरदान के सिवा और तो कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा—आपका आशीर्वाद था।

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया—आपके चले आने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ नौ साल से ज्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबन्ध कर सकते थे। उन्हें इस संकट में देखकर मैंने प्रिंसिपल साहब से कहा—उसे मेरे कमरे में ठहरा दीजिए। प्रिंसिपल साहब ने इसे नियम-विरुद्ध बतलाया। इस पर मैंने बिगड़कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया, और एक किराये का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसको सिर में दर्द होता, कभी ज्वर हो आता। आये दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर सांझ हुई और उसे झपकियां आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठता। दिन चढ़े तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंककर मेरी चारपाई पर आ जाता और मेरे गले से लिपटकर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहां पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और [illegible] लिए दूध गर्म करता। फिर उसे उठा कर हाथ-मुँह [illegible] नाश्ता करता। उसके स्वास्थ्य के विचार से [illegible] जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न [illegible]

करता। मुझे अपने दायित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डाक्टर के पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहन की खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यह चिंता लगी रहती थी, कि कोई बात उसकी इच्छा के विरुद्ध न हो जाय। इस बेचारे का यहां मेरे सिवा दूसरा कौन है। मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी त्योरियां बदल जाती थीं। कई लड़के तो मुझे बूढ़ी दाई कहकर चिढ़ाते थे; पर मैं हँसकर टाल देता था। मैं उसके सामने एक अनुचित शब्द भी मुँह से न निकालता। यह शंका होती थी, कि कहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जाय। मैं उसके सामने इस तरह चाहता था, कि वह मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे सो कर उठना, बारह बजे तक मटरगश्ती करना, नई-नई शरारतों के मंसूबे बांधना और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र-पालन के सिद्धान्तों का मैं शत्रु था; पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता था, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भाव से पूछता, परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे पास भी रहते होंगे। इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे लिए असंभव था। मैं कहता—हां, परमात्मा तुम्हारे, हमारे सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा

आनन्द से खिल उठता था, कदाचित वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ से कुछ हो गया। मामा साहब दोबारा आये, तो उसे देखकर चकित हो गए। आँखों में आँसू भरकर बोले—'बेटा ! तुमने इसको जिला लिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्ग में बैठी हुई तुम्हें आशीर्वाद दे रही है।

सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा—मोहन भी तुम्हें बहुत प्यार करता होगा ?

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों में हसरत से भरा हुआ आनन्द चमक उठा, बोला—वह मुझे एक मिनट के लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, मेरे साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आह ! वह संसार में नहीं है। मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तरह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भाँति मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। एक दिन मैंने कह दिया था—अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी इस धमकी का फल यह हुआ कि नित्य प्रातःकाल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ठंडी हवा चले, लेकिन वह स्नान अवश्य करता था। देखता रहता था, मैं किस बात से खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया था कि तुम खाना खाकर सो रहना। तीन बजे रात को लौटा, तो देखा कि वह बैठा हुआ है।

तुम सोये नहीं? बोला—नींद नहीं आई! उस दिन से मैंने थियेटर जाने का नाम न लिया। बच्चों में प्यार की जो एक भूख होती है—दूध, मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक—जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करते, मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज़ की तरह वह सदैव उसके नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था। वह मुझसे ऐसा चिपट गया था कि पृथक् किया जाता, तो उसकी कोमल बेलि के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब मेरे जीवन में प्रकाश की एक रेखा डालकर अन्धकार में विलीन हो गया। उस जीर्ण काया में कैसे-कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित् ईश्वर ने मेरे जीवन में एक अवलम्ब की सृष्टि करने के लिए उसे भेजा था। उद्देश्य पूरा हो गया तो वह क्यों रहता?

( ४ )

'गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामा जी के आग्रह करने पर भी घर न गया। अबकी कॉलेज के छात्रों ने काश्मीर-यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। काश्मीर-यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थी। इसी अवसर को ग़नीमत समझा। मोहन को मामा जी के पास भेजकर मैं काश्मीर चला गया। दो महीने के बाद लौटा, तो मालूम हुआ मोहन बीमार है। काश्मीर में मुझे बार-बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता था, लौट जाऊँ। मुझे उस पर इतना प्रेम है, इसका अन्दाज़ मुझे काश्मीर

जाकर हुआ, लेकिन मित्रों ने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते ही मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुंचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरे पर आनन्द की स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़ कर उसके गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूर दृष्टि और चेहरे पर वह अलौकिक आभा थी जो मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। मैंने आवेश से काँपते हुए स्वर में पूछा —यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन? दो ही महीने में यह नौबत पहुँच गई? मोहन ने सरल मुस्कान के साथ कहा— आप काश्मीर की सैर करने गए थे, मैं आकाश की सैर करने जा रहा हूँ।

'मगर यह दुःख-कहानी कहकर मैं रोना और रुलाना नहीं चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतने परिश्रम से पढ़ने लगा, मानों तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई थी कि साल भर की पढ़ाई दो महीने में समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम का प्रशंसा-रूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उसकी पीठ ठोकूँगा, शाबाशी दूँगा अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनता के साथ उसे वशीभूत कर लिया। मामा जी को दफ्तर के कामों से इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते देखकर वह दिल में खुश होते थे। उसे खेलते देखकर वह जरूर डाँटते। पढ़ते देखकर भला क्या कहते। फल यह हुआ कि मोहन को हल्का-हल्का ज्वर आने लगा; किन्तु उस दशा में भी पढ़ना न छोड़ा। कुछ और व्यतिक्रम भी हुए, ज्वर का प्रकोप और भी बढ़ा; पर उस दशा में भी ज्वर

कुछ हल्का हो जाता तो किताबें देखने लगता था। उसके प्राण मुझ में ही बने रहते थे। ज्वर की दशा में भी नौकरों से पूछता–भैया का पत्र आया? वह कब आयेंगे? इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी काश्मीर-यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी तो उधर जाने का नाम भी न लेता। उसे बचाने के लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने सब किया; किन्तु बुख़ार टाइफायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन के स्वप्न मेरे लिये किसी ऋषि के आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगे और यह उसी का शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशा में देख रहे हैं। मोहन की बाल अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर मुझे यह संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी कि जिसने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया; नहीं तो मैं आज भी वही मंद-बुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।'

उस दिन से मैं कई बार सूर्यप्रकाश से मिल चुका हूँ। वह जब इस तरफ़ आ जाता है, तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता है। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृति का यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

जयशंकर प्रसाद

# पुरस्कार

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा-भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम-किरणों से अनुरंजित नन्हीं-नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल-सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्र-पल्लवों से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिये, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण-रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत [illegible]। [illegible]

बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता—उस दिन इन्द्र-पूजन की धूमधाम होती; गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता, दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था, इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी, वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता नहीं की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषककुमार

मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य ! कितनी सरल चितवन !

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली; किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण-मुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—

देव ! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेंचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा—अबोध ! क्या बक रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार ! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।

राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मन्त्रिवर ! ····महाराज को भूमि-समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है; किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।—मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा—देव ! वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एक-मात्र कन्या है।—

महाराज चौंक उठे—सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है?

हाँ देव!—सविनय मन्त्री ने कहा।

इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मन्त्रिवर?—महाराज ने पूछा।

देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुन कर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये; किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

  

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ—वह अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाली खिल रही थी वही रंग उसकी आँखों में था। सामने

देखा तो मुँडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पन्द थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया; उस सुषमा को देखने के लिए, परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया—छिः, कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन? मधूलिका की आँखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी :—भद्रे! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो?

उत्सव! हाँ, उत्सव ही तो था।

कल उस सम्मान...

क्यों आपको कल का स्वप्न सता रहा है? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे?

मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि!

मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।

सरलता की देवि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती । उसे अपनी...।

राजकुमार ! मैं कृषक बालिका हूं । आप नन्दनविहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीनेवाली । आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है । मैं दुःख से विकल हूँ; मेरा उपहास न करो ।

मैं कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा ।

नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है । मैं उसे बदलना नहीं चाहती--चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो ।

तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?

यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं । राजकुमार, नयमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता । मधूलिका उठ खड़ी हुई ।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा । किशोर किरणों में उसका रत्न किरीट चमक उठा । अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई ? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी । वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी ।

× × ×

मधूलिका ने राजा का प्रतिपादन, अनुग्रह नहीं लिया । वह

दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक-वृक्ष के नीचे छोटी-सी पर्णकुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता, वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था।

दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कान्ति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाये रखनेवाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं; परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—दो, नहीं नहीं तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था?

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिये उत्सुक-सी वह पूछने लगी—क्या कहा था? दुःख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातों को स्मरण रख सकता था! और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता! हाय री विडम्बना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए

विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद माला के वैभव का काल्पनिक चित्र—उन सूखे डंठलों के रन्ध्रों से, नभ में—बिजली के आलोक में—नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका मन-ही-मन कह रही थी। 'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोंपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ—

कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—राजकुमार !

मधूलिका ?—आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई—इतने दिनों के बाद आज फिर !

अरुण ने कहा—कितना समझाया मैंने—परन्तु .....

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—और आज आपकी यह क्या दशा है ?

सिर झुका कर अरुण ने कहा—मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी—मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका, यह भी एक विडम्बना है, तो भी स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।

× × ×

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था; किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?

मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?

क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम···।

भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ, निराश क्यों हो जाऊँ?—अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था; पर कह न सकता था।

नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढंग बताओ, तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।

कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के

सम्मान से सिंहासन पर बिठाऊँगा ! तुम अपने छिने हुए खेत की चिंता करके भयभीत न हो।

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रमाद का अन्धड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार !

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला—तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ?

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, हाँ भी नहीं कह सकी, न भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा—तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से पण लगाकर मैं तुम्हें इसी कोशल सिंहासन पर बिठा दूँ। मधूलिके ! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी ?—मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी—नहीं; किन्तु उसके मुँह से निकला—क्या ?

सत्य मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिये बहुत दूर चले गये हैं।

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा—तुम बोलती नहीं हो ?

जो कहोगे वही करूँगी—मंत्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

× × ×

स्वर्णमंच पर कोशल नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किये हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे संचलित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।

आँख खोलते हुए महाराज ने कहा—स्त्री! प्रार्थना करने आई है? आने दो।

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया; महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—तुम्हें कहीं देखा है।

तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।

ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये, आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों? अच्छा-अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!

नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।

मूर्ख! फिर क्या चाहिए?

उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिण नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी! मुझे एक सहायक मिल

गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।

महाराज ने कहा—कृषक-बालिके ! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।

तो फिर निराश लौट जाऊँ ?

सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना···

देव ! जैसी आज्ञा हो !

जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।

जय हो देव ! कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राज-मन्दिर के बाहर आई।

दुर्ग के दक्षिण भयावने नाले के तट पर घना जंगल है। आज वहाँ मनुष्यों के पद-संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर इधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा-सा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिन्ता होती ?

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। सन्ध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अन्तिम किरणें झुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा—चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !

भयानक ! अरुण, तुम्हारा साहस देख मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम...

रात के तीसरे प्रहर मेरी विजय-यात्रा होगी।

तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?

अवश्य ! तुम अपनी झोंपड़ी में यह रात बिताओ, प्रभात से तो राज-मन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशंक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—अच्छा अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण-पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए, तब रात्रि भर के लिये विदा मधूलिके !

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई क्रम से बढ़ने वाले अन्धकार में, वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली।

× × × ×

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़ तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी—वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कोशल का चिर-शत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशल-नरेश ने क्या कहा था—'सिंहमित्र की कन्या'। सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, नहीं। 'मधूलिका! मधूलिका!!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोंपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बायें हाथ में थी अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यंत धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया; मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा—कौन? कोई उत्तर नहीं मिला।

तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा—तू कौन है स्त्री? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—बाँध लो, मुझे बाँध लो! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।

सेनापति हँस पड़े, बोले—पगली है।

पगली नहीं; यदि यही होती, तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती! सेनापति, मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।

क्या है? स्पष्ट कह?

श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा!

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—तू क्या कह रही है?

मैं सत्य कह रही हूँ, शीघ्रता करो।

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

× × ×

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्षा का कारण है। जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके तब

दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ पर से उतरे। उन्होंने कहा—अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?

सेनापति की जय हो! दो सौ।

उन्हें शीघ्र एकत्र करो; परन्तु बिना किसी शब्द के। सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वे अपनी सुख-निद्रा के लिये प्रस्तुत हो रहे थे; किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा—जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देख कर कहा—सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों?—क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो।

देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा

और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—मधूलिका, यह सत्य है?

हाँ, देव!

राजा ने सेनापति से कहा—सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूं। सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—सिंहमित्र की कन्या! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ।

  

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती-दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुङ्कार करते हुए कहा—'बध करो!' राजा ने सब से सहमत होकर आज्ञा दी—'प्राण-दण्ड।' मधूलिका, बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग। वह चुप रही।

राजा ने कहा—मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण

दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ पर से उतरे। उन्होंने कहा—अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?

सेनापति की जय हो! दो सौ।

उन्हें शीघ्र एकत्र करो; परन्तु विना किसी शब्द के। सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वे अपनी सुख-निद्रा के लिये प्रस्तुत हो रहे थे; किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा—जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देख कर कहा—सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों?—क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो।

देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा

और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—मधूलिका, यह सत्य है ?

हाँ, देव !

राजा ने सेनापति से कहा—सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूं। सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ।

  

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती-दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुङ्कार करते हुए कहा—'बध करो !' राजा ने सब से सहमत होकर आज्ञा दी—'प्राण-दण्ड।' मधूलिका, बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग। वह चुप रही।

राजा ने कहा—मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा।

उसने कहा मुझे कुछ न चाहिए। अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा, माँग ले।

तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले-कहती हुई वह वन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

चन्द्रधर गुलेरी

# उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों में इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़ों की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना माई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए, सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने, खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने

उसने कहा मुझे कुछ न चाहिए। अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा, माँग ले।

तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले-कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

चन्द्रधर गुलेरी

# उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों में इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़ों की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए, सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने, खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने

पर भी लोक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणजोगिए; हट जा, करमाँवालिए; हट जा, पुत्ताँप्यारिए, वच जा, लम्बीवालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है ? वच जा।

ऐसे वंबूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने विना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं ?'

'मगरे में;—और तेरे ?'

'माझे में;—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की वैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।'

इतने में दुकानदार निवटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्करा कर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई ?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ,

अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई है?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसी ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, बोली—'हाँ, हो गई।'

'कब?'

'कल—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

२

'राम-राम यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ग़नीमत कहीं दिखता नहीं—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खँदक हिल जाती है और सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोली से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खँदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरँगी मेम के बाग़ में—मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो...'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?' सूबेदार हज़ारासिंह ने मुसकरा कर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदार जी, सच है' लहनासिंह बोला—'पर करें क्या? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय।'

उद्मी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने
ट्याँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो
है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदल दे।' यह कहते हुए
दार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वज़ीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला
नी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन
या हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!' इस पर सब
खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर
कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का
पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से
दस घुमाँ जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे
लगाऊँगा।'

'लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने
वाली फिरंगी मेम...।'

'चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न
कि सिख तमाखू नहीं पीते। वह सिगरेट
ओठों में लगाना चाहती है, और मैं
है कि राजा बुरा मान गया, अब
नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कंबल उसे ओढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो; आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरुक।'

इतने में एक कोने से पंजाबी गीत की आवाज सुनाई दी। सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये; मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

( ३ )

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछा कर और लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुख पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहता है।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो ?'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन कर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।' यों कह कर लहना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?' यों कह कर नाहीं करते बोधा को उस जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मे जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आई—'सूबेदार हजारासिंह !'

'कौन, लपटन साहब ? हुकुम हुजूर' कह कर सूबेदा फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

'लो, तुम भी पियो।'

आँख मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ, साहब!' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों से कटे हुए

बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ! लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे ?'

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के वह मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पार साल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—हाँ, हाँ '—वही जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते में एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ? 'बेशक पाजी कहीं का,—'सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट के मेस में लगायेंगे। 'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया'—ऐसे बड़े-बड़े सींग दो-दो फुट के तो होंगे ?"

'हाँ' लहनासिंह; दो फुट चार इंच के थे। तुम ने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ'—कह कर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वज़ीरासिंह ?'

'हाँ' क्यों लहना ? क्यों, क़यामत आ गई ? ज़रा तो आँख लगने दी होती ?'

'होश में आओ। क़यामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।

'क्यों ?'

'लपटन साहब या तो मारे गये या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब ?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होराँ कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी दूर न गये होंगे सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।'

'हुक्म तो यह है कि यहीं...'

'ऐसी तैसी हुक्म की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह,

जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लाता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं दस लाख। एक एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर के तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गरदन पर मारा और साहब 'आँख! मीन गौट्ट*!' कहते हुए चित हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिज़ाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं।

---

*हाय, मेरे राम! (जर्मन)

यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो' पर माझे का लहना इतने बरस लपटन के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिये चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज बाँटता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़कर उन में से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आयेंगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाकबाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो...'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने

इब की कपालक्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आये।
या चिल्लाया—'क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कर सुला दिया कि 'एक हड़का
ा आया था, मार दिया'; और औरों से सब हाल कह दिया।
बंदूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़ कर
के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कस कर बाँधीं। घाव मांस में ही था।
यों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े।
क्खों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को
ा। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा
—यह खड़ा था, और वे लेटे थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा
इयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे थे। थोड़े
मिनटों में वे—

अचानक आवाज आई—"वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरु
दा खालसा!" और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ
पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में
गये। पीछे सूबेदार हज़ारासिंह के जवान आग बरसाते थे
र सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास
ने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाह
ु जी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल
ुख!!!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन
थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण

के दाहिने खंधे में गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी, उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव— भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकला आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वज़ीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागज़ात पाकर उसकी तुरत बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर-अंदर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी

में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हें बोधा की क़सम है और सूबेदारनी जी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ। वज़ीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा 'तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?'

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।'

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है

जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ी वाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। वह जब पूछता है तेरा कुड़माई हो गई, तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा, 'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू ?" सुनते ही लहनासिंह को दुख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वज़ीरासिंह पानी पिला दे।"

× × × ×

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। यहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जा रही है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा!

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढ़े में से निकल कर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुम को जानती हैं। बुलाती हैं, जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर "मत्था टेकना" कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

"तेरी कुड़माई हो गई?—धत्—कल को हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला—उसने कहा था।'

× × × ×

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरदार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी। "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में

चले गये थे और मुझे उठा कर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था; ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोते-रोती सूबेदारनी ओवरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता बाहर आया।

'वज़ीरासिंह, पानी पिला—उसने कहा था।'

× × ×

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वज़ीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

'कौन ? कीरतसिंह ?

वज़ीरा ने कुछ समझ कर कहा—'हाँ'।

'भइया' मुझे ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वज़ीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ' अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजे दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने में उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वज़ीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा फ्रांस और बेलजियम ६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा, नं० ७७ सिख राइफल्ज़, जमादार लहनासिंह।

जैनेन्द्रकुमार

# अपना-पराया

तबकी बात कहते हैं, जब रेल नहीं थी और घोड़ा ही सब से तेज़ सवारी थी।

एक मुसाफिर सिपाहियाना पोशाक में सड़क के किनारे की एक सराय पर घोड़े से उतरा। उसने घोड़े को थपथपाया और अंदर दाखिल हुआ। वह बहुत दूर से आरहा था और खूब थका हुआ था। वह चौबीस घण्टे यहाँ रहेगा और चला जायगा। उसे अभी दूर की मंज़िल तय करनी है।

सराय में पहुँचकर उसने घोड़ा सरायवाले के हाथ में थमाया और और चाहा, घोड़े के खाने वगैरह का ठीक बन्दोबस्त हो जाय और उसके लिये एक आरामदेह कमरे का फौरन इन्तज़ाम किया जाय। पैसा फ़िक्र करने की चीज़ नहीं है, लेकिन उसे आराम चाहिए।

घोड़े की व्यवस्था कर दी गई। उसके आराम और कमरे की व्यवस्था कर दी गई। उसने खाना खाया और पलंग पर लेट गया।

नींद उसे जल्दी आ गई और सपने में वह घर की बातें देखने लगा।... उसकी पत्नी जो पांच साल से विधवा की भांति रह रही है, उसके पहुँचने पर काम-धाम में बहुत व्यस्त है, प्रेम-

संभापण के लिए तनिक भी अवकाश नहीं निकाल पाती। वह मानो उससे बची-बची काम कर रही है। वह नहीं बताना चाहता कि दो हज़ार रुपया उसकी कमर से बँधा है—दो हज़ार! वह समझना चाहता है और अपनी आँखों के आगे (कल्पना द्वारा) देख लेना चाहता है, किस प्रकार मेरे पीछे इसने दिन काटे? विपदामें इस बेचारी का साथ देनेके समय वह और कह क्यों भटकता रहा? बे-पैसे, बे-आदमी, कैसी यह अपना काम चलाती रही होगी? और साढ़े चार बरस का यह करनसिंह, ओह! बिना किसी की मदद के दुनिया में कैसे आ पहुँचा होगा? वह अपनी पत्नी की सूरत बार-बार देखना चाहता है, लेकिन वह मौक़ा नहीं लगने देती! यही करनसिंह है? अरे, यह तो बहुत बड़ा हो गया! बिलकुल अपनी माँ पर है। हाँ, करनसिंह ही तो है। क्योंजी, आपका नाम करनसिंह ही है? हम कौन हैं, बतलाएगा? अपने बाप को जानते हैं? वह लड़ाई पर गया हुआ है। मैं उसी के पास से आरहा हूँ। वह आपको बहुत प्यार करता है। यह कहकर दोनों हाथ बढ़ा कर उसने बेटे को अपनी गोद में लेना चाहा।

तभी उसकी आँख खुल गई और उसने देखा, घर की मंज़िल अभी दूर पड़ी है और वह अभी सराय के अजनबी कमरे में है। उसने माथा पोंछा और कमर में बन्धी रुपयों की न्योली सम्हाली। समय उसको भारी लगता था। उसने बात चीत के लिए सरायवाले को बुलाया और मालूम होने पर भी दोबारा मालूम किया कि पूरे दो रोज़ की मंज़िल अभी और है।

इधर के हाल-चाल मालूम किये और अपनी फौज की बहुत सी बातें बताईं। उसने उस जिन्दगी का स्वाद बताया, जहाँ हर घड़ी मौत का अंदेशा रहता है और जहाँ से बाल-बच्चे सैंकड़ों कोसों दूर हैं, और छन बीतते अनन्त दूर हो सकते हैं। है तो वह स्वाद, लेकिन बड़ा कड़वा स्वाद है। बताया कि किस भांति हम मारते हैं और किस भांति हम मरते हैं। उसने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता, कैसे अपने सगे लोगों के खयाल से बच कर मरा जा सकता है। मरना कभी खुशी की बात नहीं हो सकती। और यह अचरज है क्यों कि जिन्हें हम मारते हैं, उनके बारे में यह नहीं सोचते कि मरना उनके लिए भी वैसा ही मुश्किल है। हम मार कर खुश क्यों होते हैं? लेकिन फौज में यही बात है कि जिस मारने से हम सामूली जिन्दगी में डरते हैं, उसी मारने का नाम वहाँ बहादुरी हो जाता है। वहाँ आदमी जितने ज्यादा को मारता है, उतना ही अपने को कामयाब समझता है, और लोग इसके लिए उसे इनाम और प्रतिष्ठा देते हैं। बोला—

"मुझे इसमें खुशी नहीं मिली। पर जब लोग तारीफ करते थे, तब जरूर खुशी होती थी। और आपस में जो एक होड़ का-सा भाव रहता था कि कौन ज्यादा दुश्मनों को मारता है, उस होड़ में जीतने की खुशी को भी खुशी कहा जा सकता है। असली मारने में तो दरअसल किसी तरह स्वाद है नहीं।...और दुश्मन! मुझे नहीं मालूम, वे मेरे दुश्मन क्यों थे? जिन्हें मैंने मारा, मेरा उन्होंने क्या *बिगाड़ा था?*

दुश्मन तो दुश्मन, मैं उन्हें जानता नहीं था। अब भी यह सोचने की बात मालूम होती है कि फिर वह क्यों तलवार खोलकर मेरी गर्दन काटने सीधा मेरी तरफ़ बढ़ा चला आता था और क्यों मैंने उसे अपनी तलवार की धार उतार दिया, जब कि हम में कोई तकरार न थी। कहीं-न-कहीं इस मामले में कुछ काला मालूम होता हैं। देखो, तुम हो मैं हूँ। तुम-हम दोनों पहले कभी नहीं मिले, फिर भी बैठे बात कर रहे हैं, और एक दूसरे को कोई मारने नहीं आ रहा है, बल्कि एक दूसरे के काम ही आ रहे हैं। तुम कहोगे, इस बात की हमें नौकरी मिलती है। लेकिन, नौकरी मिलने से इतना हो सकता है कि हम मार दिया करें, उसमें एक जीत का और खुशी का और अपने फर्ज अदा करने का खयाल जो आ जाता है, वह कहाँ से आता है ? सवाल है कि वह कहाँ से आता है ? इसलिए कहीं कुछ भेद की बात जरूर है। कहीं कुछ फरेब है,कुछ ऐयारी।... मेरा मन तो दो-तीन साल फौज में रहकर पक-सा गया है। अपने स्त्री-बच्चों के बीच में रहें, जमीन में से कुछ उगाएँ, हाथ के जोर से चीज़ों में कुछ अदल-बदल करें और थोड़े में सुख-चैन से रहें, तो क्या हरज है ? मैं तो कभी से वहाँ से आनेकी सोचता था। करते-करते अब आना मिला है।"

सुननेवाला 'हाँ—हूँ, करता हुआ सुन रहा था। वह जानता था, इस तरह चुप चाप बिना उकताहट जताये और बिना सुने बात सुनते रहनेका उसे रुपया-धेली कुछ मिल ही जायगा। बीच-बीच में वह भी योग देता था—"हाँ, हाँ सरकार, हाँ सरकार।"

फ़ौजी कहता रहा—"मैंने अपने बच्चे को देखा तक नहीं मेरे पीछे क्या हुआ हो और क्या नहीं। घर वाली को अकेले ही सब भुगतना हुआ होगा। मैं जो लौट आया हूँ, इसका क्या भरोसा था? छन में मर भी सकता था। क्यों भाई, क्या कहते हो?"

"हाँ सरकार।"

"देखो, तुम भी यहाँ रहते हो। तुम्हें डर न झंझट। अपना काम है, अपना घर। घर से कोसों दूर तो भटकते नहीं फिरते। न किसी की चाकरी में हो। इसमें क्या मजा है कि घर काम छोड़ कर दूर जाँय, मुलाज़मत करें और उससे जो पैसे पावें, उसके बल लौट कर पड़ोस पर नवाबी ठसक जमावें। क्यों भाई, है न बात?"

वह पैसे से भी और वैसे भी भरा था और व्ययशील हो सकता था। आशा उसे उठाये थी और सामने बैठे इस निम्नवृत्ति जीव के सामने उसे अपने को बड़ा समझना और बड़ा दिखाना अच्छा लगता था। इस प्रकार अपने बड़प्पन से स्वस्थ होकर वह इस जीवके साथ भाई-चारा भी बिना खतरेके दिखा सकता था। उसने जेब से चवन्नी निकालकर सरायवाले को दी, कहा—"लो, बाल-बच्चोंको जलेबी खिलाना...। और देखो, घोड़ा सवेरे के लिए ज़ीन कस कर तयार रहे। पचास कोस की मंजिल है, हम जल्दी घर पहुँचना चाहते हैं।"

भटियारे ने जमीन की ओर सिर झुकाया, कहा—"अच्छा सरकार।"

शाम होने पर जरा इधर उधर घूमा, रात बुला—

दुश्मन तो दुश्मन, मैं उन्हें जानता नहीं था। अब भी यह सोचने की बात मालूम होती है कि फिर वह क्यों तलवार खोलकर मेरी गर्दन काटने सीधा मेरी तरफ़ बढ़ा चला आता था और क्यों मैंने उसे अपनी तलवार की धार उतार दिया, जब कि हम में कोई तकरार न थी। कहीं-न-कहीं इस मामले में कुछ काला मालूम होता है। देखो, तुम हो मैं हूँ। तुम-हम दोनों पहले कभी नहीं मिले, फिर भी बैठे बात कर रहे हैं, और एक दूसरे को कोई मारने नहीं आ रहा है, बल्कि एक दूसरे के काम ही आ रहे हैं। तुम कहोगे, इस बात की हमें नौकरी मिलती है। लेकिन, नौकरी मिलने से इतना हो सकता है कि हम मार दिया करें, उसमें एक जीत का और खुशी का और अपने फर्ज अदा करने का खयाल जो आ जाता है, वह कहाँ से आता है? सवाल है कि वह कहाँ से आता है? इसलिए कहीं कुछ भेद की बात जरूर है। कहीं कुछ फरेब है, कुछ ऐयारी।... मेरा मन तो दो-तीन साल फौज में रहकर पक-सा गया है। अपने स्त्री-बच्चों के बीच में रहें, जमीन में से कुछ उगाएँ, हाथ के जोर से चीज़ों में कुछ अदल-बदल करें और थोड़े में सुख-चैन से रहें, तो क्या हरज है? मैं तो कभी से वहाँ से आनेकी सोचता था। करते-करते अब आना मिला है।"

सुननेवाला 'हाँ—हूँ, करता हुआ सुन रहा था। वह जानता था, इस तरह चुप चाप बिना उकताहट जताये और बिना सुने बात सुनते रहनेका उसे रुपया-धेली कुछ मिल ही जायगा। बीच-बीच में वह भी योग देता था—"हाँ, हाँ सरकार, हाँ सरकार।"

फ़ौजी कहता रहा—"मैंने अपने बच्चे को देखा तक नहीं मेरे पीछे क्या हुआ हो और क्या नहीं। घर वाली को अकेले ही सब भुगतना हुआ होगा। मैं जो लौट आया हूँ, इसका क्या भरोसा था? छन में मर भी सकता था। क्यों भाई, क्या कहते हो?"

"हाँ सरकार।"

"देखो, तुम भी यहाँ रहते हो। तुम्हें डर न झंझट। अपना काम है, अपना घर। घर से कोसों दूर तो भटकते नहीं फिरते। न किसी की चाकरी में हो। इसमें क्या मज़ा है कि घर काम छोड़ कर दूर जाँय, मुलाज़मत करें और उससे जो पैसे पावें, उसके बल लौट कर पड़ोस पर नवाबी ठसक जमावें। क्यों भाई, है न बात?"

वह पैसे से भी और वैसे भी भरा था और व्ययशील हो सकता था। आशा उसे उठाये थी और सामने बैठे इस निम्नवृत्ति जीव के सामने उसे अपने को बड़ा समझना और बड़ा दिखाना अच्छा लगता था। इस प्रकार अपने बड़प्पन से स्वस्थ होकर वह इस जीवके साथ भाई-चारा भी बिना खतरेके दिखा सकता था। उसने जेब से चवन्नी निकालकर सरायवाले को दी, कहा—"लो, बाल-बच्चोंको जलेबी खिलाना...। और देखो, घोड़ा सवेरे के लिए जीन कस कर तयार रहे। पचास कोस की मंजिल है, हम जल्दी घर पहुँचना चाहते हैं।"

भटियारे ने जमीन की ओर सिर झुकाया, कहा—"अच्छा सरकार।"

शाम होने पर जरा इधर उधर घूमा, रात बुलाई और

खाना खा-पीकर सोने की चेष्टा करने लगा। सोचता था—सवेरे ही उठकर वह गजरदम चल देगा।

   

जब रात सुनसान थी और वह गाढ़ी नींद सो रहा था, तभी एक व्याघात उपस्थित हुआ। पास ही कहीं से एक बच्चे के रोने की आवाज सुन पड़ी। उस बच्चे की मां उसे बहुत मनाती थी, पर वह मानता नहीं था। शायद भूखा हो या हठीला। कभी मां उसे झिड़कती थी, कभी पुचकारती थी। लेकिन बच्चा अच्छी तरह चुप नहीं हो रहा था।

बच्चे के लगातार रोने की वह आवाज उस सन्नाटे में उसे बेहद मालूम हुई। जो पत्नी से मिलने का सुख-स्वप्न देख रहा था, वह उचट गया। यह बेमतलब का क्रन्दन, बेराग बेस्वर, सन्नाटे को चीर कर आता हुआ उसके कानों को बहुत अप्रिय लगा। पहले तो उसने चाहा कि वह सह ले और सो जाय। पर नींद असम्भव हो गई थी और वह राग रुकता न था। आखिर झल्लाकर ज़ोर की आवाज से उसने भटियारे को बुलाया। भटियारा डरता हुआ आया और उसने पूछा—"यह कैसा शोर है?"

"हुज़ूर, एक बच्चा है...।"

'बच्चा है तो बदशऊर चुप क्यों नहीं रहता?'

"हुज़ूर बीमार होगा।"

"बीमार है, तो उसके लिए यह जगह? क्यों बीमार है?"

भटियारा चुप।

"साथ उसकी मां है ?"

"हाँ हुजूर है,। वे कल यहाँ से चले जाने को कहते हैं।"

उससे कहो—"बच्चे को चुप करे, नहीं तो हमारी नींद में खलल पड़ता है। चलो, जाओ।"

थोड़ी देर में भटियारे ने लौटकर बताया कि बच्चे की तबीयत खराब है और भूखा भी है। मैंने डाँट कर कह दिया है देखिए, जल्दी चुप हो जायगा।

लेकिन बच्चे का रोना जारी रहा। बच्चा और उसकी माँ कहीं पास ही की कोठरी में थे। यह भी सुन पड़ा कि उसकी माँ ने बच्चे के दो-तीन चपत जमाये हैं लेकिन इसपर बच्चे का चिल्लाना कुछ और ही प्रबल हो गया है।

"मर अभागे, तू मुझे और क्या-क्या दिखावेगा ?"—सुन पड़ा, माँ ने ऐसा कहा है और कह कर वह सिसकने लगी है।

सिपाही ने फिर नींद लेने की कोशिश की। पर बच्चे का चीखना उसी तरह जारी था। एक स्त्री की सिसक और एक बच्चे की चीख सिरपर अगर चलती ही रहे, तो क्या चैन आसान है ? क्या उसको सहना सहज है ? सो सिपाही की सहन-शक्ति की पराकाष्ठा जल्दी आगई। फिर भटियारे को बुलाया "यह बदनसीब चीखना नहीं छोड़ेगा ? उसे निकालो यहाँ से ?

"हुजूर गरीब है,। कुछ घण्टों की बात है, सवेरा होते वह भी अपना रास्ता लेगी; हुजूरको भी तशरीफ ले जाना है।"

"नहीं, नहीं, बीमारों के लिए यह जगह नहीं है। हम कहते हैं, उसे अभी कहो, निकल जाय। सोने ही नहीं देता।"

"हजूर इतनी रात को वह कहाँ जायगी।"

"कहाँ जायगी ? क्यों सारी दुनिया तेरी सराय के ऊपर

है ? अस्तबल में रक्खो, कहीं रक्खो, जहाँ से शोर हमें बिल्कुल न आए। समझे ?"

सरायवाला इसको पैसे वाला जान नाखुश नहीं करना चाहता था। उसे प्राप्ति की करारी आशा थी। उसने बच्चे की माँ के पास जाकर कहा—"बराबर में एक फौज के सरदार ठहरे हैं। बच्चे के रोने से उनकी नींद में खलल पड़ता है। अगर चुप नहीं हो सकता, तो तुम यहाँ से ले जाओ।"

स्त्री ने गिड़गिड़ा कर कहा—"बच्चे की ऐसी हालत में मैं उसे और कहाँ ले जाऊँ ? जाड़ोंके दिन हैं, आधी रात हो रही है। कुछ घण्टे ठहरो मालिक, तड़का होते ही मैं चली जाऊँगी।"

भटियारे ने कहा—"नहीं, तुम अभी चली जाओ। नहीं तो वह खफा होंगे।"

स्त्रीने कहा—"उन सरदार जी से हाथ जोड़कर कहो—मैं दुखिया हूँ। थोड़ी देर के लिए और मेहरबानी करें। बच्चे के बाप का पता नहीं है। अब इसको कहाँ ढकेल दूँ ? पौ फटते ही चल दूँगी।"

भटियारे के मनमें न था कि यह जाय, पर सरकार की खफगी का उसे डर था।

उसने कहा—"माई, किनारेका अस्तबल है, वह मैं तुम्हें बताये देता हूँ। रात वहीं काटो। तुम देखती नहीं हो, इससे मेरी रोजीपर खतरा आता है।"

इसपर उसने गोद से बच्चे को उठा कर दूर ढकेल दिया, कहा—"लो, इसे ले जा के उनके पैरों में डाल दो, वह जूते से इसको ढेर कर दें। मैं फिर चली जाऊँगी।"

इतना कहकर यह दोनों हाथोंमें अपने सिर को लेकर धीरे-धीरे रोने लगी। उधर फर्श पर पड़ा बच्चा जोर से चीख रहा था।

सरायवाला इस सहमा-सा रह गया। उसने लौट आकर कहा—"हुजूर, कुछ घण्टों की और बात है। आप उसे माफ कर दें। वह बहुत दुखिया मालूम होती है।"

इस आदमी को ऐसा लगा कि उसके हुक्म की अवहेलना हो रही है। वह अपने कमरे में टहलता हुआ जो कहना-सुनना भठियारे और बच्चे की माँ के बीचमें हुआ, सब सुन रहा था। उसके मन को आराम नहीं मिल रहा था। उसको बुरा मालूम हो रहा था। कि क्यों वह इस गंदी परिस्थिति में पड़ गया क्यों उसे जिद करनी चाहिये कि बच्चे को लेकर वह औरत ठीक उसी वक्त कोठरी से बाहर निकल जाय? लेकिन जब भठियारे ने उसके सामने आकर यह कहा कि उसे दया करनी चाहिए, तब मानो आपने विरुद्ध होकर उससे जोर से कहा—"तुमसे इतना नहीं होता और तुम अपने को मर्द समझते हो? चलो हटो!" और जोर से धरती को कुचलता हुआ वह उस ओर चला, जिधर से बच्चे की आवाज आ रही थी।

कोठरी में दिया मद्धिम जल रहा था और दोनों हाथों में माथा थामे एक औरत बैठी थी। पास नंगा धरती पर पड़ा हुआ बच्चा चिल्ला रहा था।

"अंदर कौन है?"

अंदर से कोई नहीं बोला।

इस व्यक्तिने और जोर से कहा—"हम कहते हैं, अंदर कौन है? क्या तू बहरी है?"

स्त्री ज़रा ज़ोर से सिसकने लगी और चुप रही।

"देखो, तुमको इसी वक्त बच्चे को लेकर चले जाना होगा। बच्चा रोता है, तो चुप नहीं रख सकती; और कहते हैं, तो मुँह से जवाब नहीं फूटता !"

स्त्री चुपचाप उठी, बच्चे को उठाया और बाहर आकर उस व्यक्तिके पैरों में बच्चे को डालकर उसने कहा—"मैं चली जाती हूँ। इस बच्चे को तुम ठोकर मारकर जहाँ चाहे फेंक दो।" और वह चलने लगी।

वह व्यक्ति, जाने क्यों, एकदम सकते से में पड़ गया। उसने कहा—"ठैरो, ठैरो ! कहाँ जाती हो ?"

स्त्री ने कहा—"जहाँ मौत मिले, वहीं जाती हूँ।"

व्यक्ति में एकदम परिवर्तन होने लगा। उसने पूछा—"तो भी तुम कहाँ से आ रही हो और फिर किधर जाती हो ?"

स्त्री ने कहा—"पाँच बरस से इस बच्चे का बाप नहीं लौटा। वह लड़ाई पर गया है। कौन जाने, मर गया हो। कौन जाने, शायद लौटते हुए मुझे रास्ते में ही मिल जाय। मैं उसी के पास इस बदनसीब बच्चे को ले जा रही हूँ।"

पुरुष की आँखों में आँसू आ गये। उसने अपने बच्चे को अपने पैरों पर से उठा लिया। वह अपनी स्त्री से यह भी नहीं कह सका कि तुमने मुझे पहचाना नहीं। बच्चे को चूमा-पुचकारा, और डोल-डोलकर गा-गा कर उसे मनाने लगा।

वृन्दावनलाल वर्मा

# शरणागत

१

रज्जब अपना रोजगार करके ललिपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो-तीन सौ की बड़ी रक़म। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफ़ी दूर था, बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिए उसने मड़पुरा नामक गाँव में जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था; रकम पास में थी, और बैलगाड़ी किराये पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ! जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवाय गाँव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीदकर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात-भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की, किन्तु किसी ने भी मंजूर न किया! उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग अलग और छिपे-लुके बेंचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह तरह की खबरें फैलतीं इसलिए सब ने इनकार कर दिया।

स्त्री ज़रा ज़ोर से सिसकने लगी और चुप रही।

"देखो, तुमको इसी वक्त बच्चे को लेकर चले जाना होगा। बच्चा रोता है, तो चुप नहीं रख सकती; और कहते हैं, तो मुँह से जवाब नहीं फूटता !"

स्त्री चुपचाप उठी, बच्चे को उठाया और बाहर आकर उस व्यक्तिके पैरों में बच्चे को डालकर उसने कहा—"मैं चली जाती हूँ। इस बच्चे को तुम ठोकर मारकर जहाँ चाहे फेंक दो।" और वह चलने लगी।

वह व्यक्ति, जाने क्यों, एकदम सकते से में पड़ गया। उसने कहा—"ठैरो, ठैरो ! कहाँ जाती हो ?"

स्त्री ने कहा—"जहाँ मौत मिले, वहीं जाती हूँ।"

व्यक्ति में एकदम परिवर्तन होने लगा। उसने पूछा—"तो भी तुम कहाँ से आ रही हो और फिर किधर जाती हो ?"

स्त्री ने कहा—"पाँच बरस से इस बच्चे का बाप नहीं लौटा। वह लड़ाई पर गया है। कौन जाने, मर गया हो। कौन जाने, शायद लौटते हुए मुझे रास्ते में ही मिल जाय। मैं उसी के पास इस बदनसीब बच्चे को ले जा रही हूँ।"

पुरुष की आँखों में आँसू आ गये। उसने अपने बच्चे को अपने पैरों पर से उठा लिया। वह अपनी स्त्री से यह भी नहीं कह सका कि तुमने मुझे पहचाना नहीं। बच्चे को चूमा-पुचकारा, और डोल-डोलकर गा-गा कर उसे मनाने लगा।

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा—"यह राजा का घर है। इसीलिए शरण में आया हूँ।"

तुरन्त ठाकुर की आँखों की कठोरता ग़ायब हो गई। ज़रा नरम स्वर में बोला—"किसी ने तुमको बसेरा नहीं दिया ?"

"नहीं महाराज !" रज्जब ने उत्तर दिया—"बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।" और वह दरवाजे के बाहर ही, एक कोने से चिपट कर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती काँपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—"तुम अपनी चिलम लिये हो ?"

"हाँ, सरकार !" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—'तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।"

जब वे दोनों भीतर आ गये, ठाकुर ने पूछा—"तुम कब यहाँ से उठ कर जाओगे ?" जवाब मिला—"अँधेरे में ही महाराज ! खाने के लिये रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिए पकाने की जरूरत न पड़ेगी ?"

"तुम्हारा नाम ?

"रज्जब।"

२

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—"कहाँ से आ रहे हो ?" रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

गाँव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी जमीन थी, जिसको किसान जोतते थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु गाँव वाले उसको गढ़ी के आदर-व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वरग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—"दाऊ जी, एक बिनती है।"

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले डुले पूँछा—"क्या?"

रज्जब बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को जोर से बुखार आ रहा है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात-भर के लिए कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूँ तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—"जानता है, यह किसका घर है? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने?"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—"कसाई का पैसा न छूएँगे।"

"क्यों ?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपयों पर कसाई थोड़े ही लिखा है।"

"रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ में आने से रुपया कसाई नहीं हुआ।"

"मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।"

ज्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी।

ठाकुर भी सो गया।

३

सवेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हल्का हो गया था, परन्तु शरीर-भर में पीड़ा थी, और वह एक क़दम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देख कर कुपित हो गया। रज्जब से बोला—"मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किये हैं। गाँव भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ और इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, किन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोक-मत का

"वहाँ किस लिए गये थे ?"

"अपने रोजगार के लिए !"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है ।"

"क्या करूँ पेट के लिये करना पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है ।"

"क्या नफा हुआ ?" प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा सङ्कोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब उससे बढ़कर !

रज्जब ने जवाब दिया—"महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है, यों ही ।" ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—"बड़े भोर उठ कर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबियत भी अच्छी हो जायगी ।"

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये। काफी रात गये कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरेसे कहा—"दाऊजी ! आज तो खाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन बैठा है ।"

ठाकुर ने कहा—"आज ज़रूरत थी। खैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था ?"

"हाँ"—आगन्तुक बोला—"एक कसाई रुपये की मोट बाँधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे। ज़रा जल्दी ।"

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत हो कर कहने लगा—"भाई, आफ़त सब के ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुन कर गाड़ीवान को हँसी आ गई।

उसको टस से मस न होता देखकर रज्जब ने और पैसे दिये तब उसने गाड़ी हाँकी।

४

पाँच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान वह हठ जिसके कारण उस को कुछ पैसे व्यर्थ ही और दे देने पड़े थे उसे गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

"गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर, वहीं ठहरेंगे।"

"किसके यहाँ ?"

दबदबा उसके मन पर भी था। इसलिए रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठा, और हिन्दू-मात्र को मन ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर आध पहर में उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराये पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राज़ी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को जोर का बुखार आया और वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थी, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम से कम कंपकंपी बन्द न हो जाय।

घंटे डेढ़ घंटे बाद उसकी कंपकंपी बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—"दिन भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो।"

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला—"इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं घर जाता हूँ।"

परन्तु और आगे न जाऊँगा कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

५

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठक कर खड़े हो गये। रज्जब सामने देख रहा था, इसलिए ज़रा कड़क कर गाड़ीवान से बोला—"क्यों बे बदमाश ! सो गया क्या ?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी कठोर कंठ के निकला—"खबरदार, जो आगे बढ़ा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े बड़े लट्ठ बाँधकर न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमें से तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरों पर एक लट्ठ पटका और दो दाएँ-बाँए आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—"मालिक ! मैं तो गाड़ीवन हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।"

"यह कौन है ?" एक ने गरज कर पूछा—

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिये।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी।

"किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सवेरे ललितपुर चलेंगे।"

"कल का फिर पैसा मांग उठना।"

"कैसे माँग उठूँगा ? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा ?"

"जैसे आज गांव में हठ कर के माँगा था। बेटा ! ललितपुर होता तो बता देता।"

"क्या बतला देते ? क्या सेंतमेंत गाड़ी में बैठना चाहते थे ?"

"क्यों बे, क्या रुपया देकर भी सेंतमेंत का बैठना कहाता है ? जानता है मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़बड़ करेगा, तो साले को यहाँ छुरी से काट कर कहीं फेंक दूँगा, और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूँगा।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नहीं करना चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली-भांति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आस-पास झाड़ी खड़ी थी, ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला और अब निकला। रज्जब की बात सुन कर उसकी हड्डी-हड्डी काँप गई। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों को उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा, उसने सोचा—गाँव के आते ही गाड़ी छोड़ कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा, और हल्ला गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊँगा ! रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूँगा,

परन्तु और आगे न जाऊँगा कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

५

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठक कर खड़े हो गये। रज्जब सामने देख रहा था, इसलिए ज़रा कड़क कर गाड़ीवान से बोला—"क्यों बे बदमाश ! सो गया क्या ?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी कठोर कंठ के निकला—"खबरदार, जो आगे बढ़ा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े बड़े लट्ठ बाँधकर न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमें से तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरों पर एक लट्ठ पटका और दो दाँएँ-बाँए आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—"मालिक ! मैं तो गाड़ीवन हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।"

"यह कौन है ?" एक ने गरज कर पूछा—

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक-हाथ से सँभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिये।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी।

गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये पर गाड़ी लिए जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिए तीन चार आने पैसे ।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा--

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक कसाई।"

रज्जब के सिर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई, लाठीवाले के मुँह से निकला—"तुम कसाई हो? सच बताओ।"

"हाँ, महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—"मैं बहुत गरीब हूँ; हाथ जोड़ता हूँ, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत जोर से कराही।

लाठीवाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा—"इसका नाम रज्जब है। छोड़ो। चलें यहां से।"

उसने न माना। बोला—"इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजी। यदि वैसे न माने तो। असाई कसाई हम कुछ नहीं मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा"; उसने कहा—"इसपर हाथ न पसारेंगे और न इसका पैसा छुएँगे।

दूसरा बोला—"क्या कसाई होने के डर से ? दाऊजी ! आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं; मैं देखता हूँ।" और, वह तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी पर चढ़ गया। लठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया पैसा निकाल कर देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर में कहा—"नीचे उतर आओ, उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो, मेरी बला से," गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—"मैं कसाइयों की दवा हूँ !" और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा—"खबरदार, जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।"

गाड़ीवान लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—"सब लोग अपने अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।" फिर गाड़ीवान से बोला—"जा रे, हाँक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना। नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और तुम दोनों में से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा की तो भूसी को आग में जलाकर खाक कर दूँगा।"

गाड़ीवान गाड़ी ले कर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा—

"दाऊजी ! आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।"

दाऊजी ने कहा—न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता हूँ। परन्तु बुंदेला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।"

चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

# गोरा

( १ )

कह नहीं सकते कि सुखी जीवन की वास्तविक पहिचान क्या है, फिर भी इतना निश्चित है कि जीवन एक सुखी किसान था। आर्थिक दृष्टि से वह बिलकुल दरिद्र था। गाँव की हद जहाँ जंगल से मिलती थी, उस स्थान की २०—२५ बीघा मामूली ढंग की जमीन पर उसका मौरूसी हक़ था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त २—३ बच्चे भी थे। घर-गिरस्ती के लिये आवश्यक सामान का उसके पास अभाव नहीं था। मुरब्बा और परौंठे न सही नमकीन सत्तू ही सही—यह परिवार जिस किसी तरह दोनों जून अपने पेट के गढ़ों को भर अवश्य लेता था। पति-पत्नी में खूब निभती थी। दोनों ही शरीर से स्वस्थ और स्वभाव के मीठे थे। जीवन मेहनती आदमी था। उसे काम करने का शौक था—मानो वह इसके लिये बहाने ढूँढ़ता हो। रबी की फ़सल कट चुकने के बाद भी उसे किसी ने सुस्ताते नहीं देखा। उन दिनों के लिये वह पहिले-ही-से अपनी जमीन के ५—७ कम उपजाऊ बीघों को घेर-घारकर तय्यार कर रखता था। यहाँ खरबूजे बोये जाते थे। जीवन-परिवार के ये दिन बड़े मजे में कटते थे। खरबूजों के खेत में जामुन की घनी छाया के

खेत की हद से मिलकर जो जंगल मीलों तक तक फैला हुआ था, उसका प्रान्त भाग बहुत घना नहीं था। साधारण झाड़ियों और ढाक के पेड़ों के अतिरिक्त कोई बड़ा वृक्ष वहाँ नहीं था। जंगल में प्रविष्ट होकर, एक बड़े कुण्ड की ओट में उसने देखा कि एक छोटे से बछड़े पर ४--५ गीदड़ आक्रमण कर रहे हैं और वह बेचारा जमीन पर लेटा हुआ बड़े करुण स्वर में 'बां' 'बां' कर रहा है। एक लैम्प-हस्त आदमी को अपनी तरफ़ आता हुआ देखकर सब गीदड़ भाग खड़े हुए।

जीवन ने पास जाकर देखा कि बछड़े को बहुत अधिक चोट नहीं आई है। सिर्फ उसकी अगली दांई टाँग और पीठ का कुछ भाग ही जख़मी हुआ है। जीवन ने अनुमान से पहिचाना कि उसकी आयु दो मास से अधिक प्रतीत नहीं होती। बछड़े का रंग बिल्कुल श्वेत था और उसके माथे पर लाल शंख का निशान बना हुआ था। जीवन बछड़े को धीरे से गोद में उठा कर अपनी झोपड़ी में चला गया।

प्रातःकाल उठकर जीवन ने जांच करके देखा कि बछड़े की जात बहुत अच्छी है। अगर कुछ यत्न किया जाय तो वह एक बहुत बढ़िया बैल बन सकता है। जीवन की घरवाली अभी सोई ही हुई थी कि जीवन ने इस बछड़े को उसकी चारपाई पर डाल दिया वहह ड़बड़ा कर उठ बैठी। इस प्रकारअ कस्मात् निद्रा भंग हो जाने का कारण भी अभी तक वह पूरी तरह से नहीं समझ पाई थी कि उसने सुना; जीवन कह रहा था—"परमेश्वर ने पालने के लिये तुम्हें एक और बच्चा

पति-पत्नी दोनों ने सम्मिलित रूप से खूब सोच-विचारकर इस मनुष्येतर जाति के बालक का नाम रक्खा—'गोरा।'

जीवन की क़िस्मत अच्छी थी। उसके प्रयत्न से गोरा के दोनों घाव शीघ्र ही भर गये। अच्छा होकर वह खूब कूदने फाँदने लगा। कुछ ही महीनों में गोरा का डील-डौल खूब भर आया। उसके कन्धे उन्नत और पट्ठे मज़बूत हो गए।

( २ )

देखते ही देखते 'गोरा' एक बड़ा डील-डौल वाला बैल बन गया। उसके मुकाबिले का बैल आसपास के अनेक गाँवों में मिलना कठिन था। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्तानी थी और उसकी गरज बादल की गरज के समान गम्भीर। लोग उसे अब विस्मय के साथ देखते और जीवन के भाग्यों की सराहना करते थे।

जीवन को गोरा पर अपने बच्चों के समान प्रेम था। प्रतिदिन दोनों समय मेहनत करके वह उसके लिए कुटी तय्यार किया करता था। यथाशक्ति वह उसे कभी कभी तेल और घी भी पिलाया करता था। जीवन की घर-वाली को तो गोरा से एक तरह का मोह हो गया था। वह उसे हर समय आँखोंके सामने रखना चाहती थी। उसके छोटे बच्चे उस विशालकाय बैल की चौड़ी छाती के नीचे खड़े होकर उसके गलेकी नरम और सुन्दर सास्ना को अपने चंचल हाथों से इधर उधर हिलाया करते थे। गोरा आँखें बन्द करके बच्चों के इस अबोध-प्यार का मज़ा लिया करता था। गोरा के डील-डौलका दूसरा बैल जीवनके पास तो क्या, गाँव-भर में नहीं

था, इस कारण जीवन उसे हल में नहीं जोत सकता था। यही दलील देकर बहुत से लोगोंने एक हज़ार रुपयों तक दाम लगा कर गोरा को जीवन से खरीदना चाहा, परन्तु जीवन को यह मंजूर नहीं था। वह कहता था, कभी धन के लालच से कोई अपनी सन्तान को भी बेंचता है? जीवन के पास एक मामूली-सी बैलगाड़ी थी, वह गोरा को इसी में जोता करता था।

जीवन के गाँव के नजदीक ही एक बहुत बड़ा सरकारी मैदान था। लोगों में मशहूर था कि मुसलमानी हुकूमत के दिनों में राह चलती हुई फौज़ें इसी मैदान में पड़ाव किया करती थीं। आजकल यह मैदान एक ग्रामीण प्रदर्शिनी के काम में लाया जाता था। यहाँ शरद्-ऋतुमें सरकार की ओर से पशुओं की एक बड़ी भारी नुमाइश की जाती थी। दूर दूर के लोग इस नुमाइश में अपने जानवरों को लाते थे। जो जानवर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे, उन्हें सरकार की ओर से इनाम भी दिया जाता था।

गाँवके ज़मींदार का नाम था लखपतराय। वह बेपरवाह, आलसी और शौकीन आदमी था। गाँव के काम-काज में अधिक दखल देना उसे पसन्द नहीं था। यही कारण था कि उस गाँव के किसानों को वर्ष के अधिकांश भाग में अपने ज़मींदार से कोई विशेष शिकायत नहीं रहती थी। परन्तु जिन दिनों जमींदार को दावत, शिकार या सरकारी अफ़सरों की खातिर-दारी करने की खब्त सवार होती थी, उन दिनों गाँववालों की आफ़त आ जाती थी। नुमाइश के महीने में जब जिले के कुछ मोटे अफ़सर इन्तज़ाम का काम करने के लिये इस [illegible] में

आते थे, उन दिनों उनकी खातिर करते करते किसानों की जान निकलने लगती थी।

प्रदर्शिनी की प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का ज़मींदार को खास शौक था। उसने कुछ बैल और घोड़े महज़ इसी काम के लिये पाल रक्खे थे। ज़मींदार के जानवर थे, खाने पीने की क्या कमी ? खास कर नुमाइश के दिनों में एक एक जानवर के पीछे चार चार किसान दिन-रात भागे फिरते थे। नुमाइश का सब से पहिला इनाम कई बरसों से लखपतराय को उसके एक बैल के लिये मिल रहा था। इस वर्ष भी ज़मींदार को यह विश्वास था कि प्रदर्शिनी का प्रथम पुरस्कार उसी के हाथ में रहेगा।

इधर लोगों को यक़ीन था कि ज़मींदार के बैल का गोरा से कोई मुक़ाबिला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाय तो गोरा एक ही वार में ज़मींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग जीवन पर इस बार की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होनेके लिये जोर डाल रहे थे, मगर वह इनकार करता था। मगर यार लोग भी कब मानने वाले थे ? ख़ास कर जो लोग प्रतिवर्ष ज़मींदार से नीचा देखते थे, वे भला इस सुवर्ण-अवसर को किस तरह हाथ से जाने देते ? आखिर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिये जीवन को तैयार कर ही लिया।

नतीजा यह हुआ कि इस वर्ष नुमाइश का प्रथम पुरस्कार ज़मींदार को नहीं मिल सका, गोरा ही इस इनाम का अधिकारी समझा गया।

[ ३ ]

जीवन अपनी गाड़ी को घर की तरफ़ दौड़ाये लिये जा रहा था। गोरा के लिये यह खाली गाड़ी फूल के समान हल्की थी। गोरा ने कल ही नुमाइश में नामवरी हासिल की थी, इसलिये जीवन ने उसे आज यथेष्ठ घी पिलाया था। गोरा के गले में उसने फूलों की एक माला डाल रक्खी थी। पशु होते हुए भी गोरा यह समझ गया था कि आज उसका मालिक उससे विशेष प्रसन्न है। इस कारण वह मस्तानी चालसे गाड़ी को उड़ाये चला जा रहा था। गाड़ी में बैठा हुआ जीवन, अपने खबड़-खाबड़ स्वर में कोई ग्रामणी गीत गा रहा था।

अपने घर के सामने पहुँचते ही जीवन का हृदय किसी निकट अनिष्ट की आशंका के भय से काँप उठा। उसके घर के द्वार पर ज़मींदार का कारिन्दा खड़ा हुआ था जीवन का उन्मुक्त संगीत सहसा रुक गया। अजान पशु ने भी मानों अपने मालिक के मन का भाव भाँप लिया—उसकी चाल धीमी पड़ गई।

इसी समय कारिन्दे ने आगे बढ़कर आदेश दिया—"जीवन, चलो, तुम्हें जमींदार ने याद किया है।"

"भाई साहब, राम राम" कहकर जीवन बड़ी नर्म आवाज़ से पूछा—"कुछ मालूम है कि मुझे मालिक ने क्यों बुलाया है?"

कारिन्दे ने लापरवाही से जवाब दिया—"नहीं, मुझे क्या मालूम?"

जीवन ज़मींदार के सामने पहुँचा। ज़मींदार लखपतराय अपने मकान के सामने धीरे धीरे टहल रहा था। जीवन ने वहाँ पहुँच कर उसे झुक कर वन्दगी की।

लखपतराय ने मुस्किरा कर कहा—"जीवन, नुमाइश की जीत के लिये बधाई!"

जीवन का हृदय काँप गया। यह ताना है या बधाई! उसने धीमे से सिर्फ़ इतना ही कहा—"यह हजूर की मेहरबानी है।"

अब ज़मींदार ने खूब गम्भीर होकर कहा—"जीवन, मैं सचमुच तुम्हारे बैल से बड़ा प्रसन्न हूँ। मैं उसे तुमसे खरीद लेना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ कि वह बैल तुम्हारे यहाँ बिल्कुल निठल्ला रहता है, इसलिये मुझे उम्मीद है कि उसे बेंचने में तुम आनाकानी न करोगे।"

जीवन काँप गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

ज़मींदार ने कहा—"बोलो, चुप क्यों हो?"

जीवन धीरे से बोला—"हजूर, आप के पास जानवरों की क्या कमी है। उस बैल को मैं बेंचना नहीं चाहता।"

"तुम्हें उसके बदले मुँह माँगा दाम मिलेगा।"

"मैं उसे किसी भी दाम पर बेंचना नहीं चाहता। हजूर, मैं खुद भी तो आपही की जायदाद हूँ।"

ज़मींदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया—"तुम्हारा लगान माफ़ कर दूँगा।"

जीवन ने नकारात्मक उत्तर दिया।

ज़मींदार इस परभी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया—"तुम्हें यह बैल मुझे बेंच देना होगा।"

जीवन चुप रहा।

ज़मींदार ने फिर कहा—"सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और उपाय से दोगे ?"

जीवन को भी कुछ आवेश आ गया। उसने काँपती हुई आवाज में कहा—"हरगिज नहीं।"

ज़मींदार ने कहा—"अच्छा, जाओ।"

इस दिन के बाद से अभागे जीवन पर जमींदार ने सख़्ती करना शुरू किया। उससे कठिन बेगार ली जाने लगी। बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में लगा रहना पड़े। कभी कभी अकेले गोरा को ही बेगार में माँग लिया जाता था। जीवन के दरिद्र परिवार पर यह एक नई आफ़त आ खड़ी हुई। परन्तु फिर भी जीवन ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी किस्मत के भरोसे जीवन यह सब अत्याचार सहने लगा।

( ४ )

जंगल से लकड़ियाँ काट कर गांव की तरफ लौटते हुए जीवन काँप उठा। आसमान अचानक काले काले बादलों से घिर आया था। जीवन को जिस बात का भय था, आख़िर वही हुई। इस चौमासे के दिनों में गाँव से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार करके लकड़ियाँ काटने जाना सचमुच एक बड़े जोखिम

जीवन ज़मींदार के सामने पहुँचा। ज़मींदार लखपतराय अपने मकान के सामने धीरे धीरे टहल रहा था। जीवन ने वहाँ पहुँच कर उसे झुक कर वन्दगी की।

लखपतराय ने मुस्किरा कर कहा—"जीवन, नुमाइश की जीत के लिये वधाई!"

जीवन का हृदय काँप गया। यह ताना है या वधाई! उसने धीमे से सिर्फ़ इतना ही कहा—"यह हजूर की मेहरवानी है।"

अब ज़मींदार ने खूब गम्भीर होकर कहा—"जीवन, मैं सचमुच तुम्हारे वैल से वड़ा प्रसन्न हूँ। मैं उसे तुमसे ख़रीद लेना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ कि वह वैल तुम्हारे यहाँ विल्कुल निठल्ला रहता है, इसलिये मुझे उम्मीद है कि उसे वेंचने में तुम आनाकानी न करोगे।"

जीवन काँप गया। उसने कोई जवाव नहीं दिया।

ज़मींदार ने कहा—"वोलो, चुप क्यों हो?"

जीवन धीरे से वोला—"हजूर, आप के पास जानवरों की क्या कमी है। इस वैल को मैं वेंचना नहीं चाहता।"

"तुम्हें उसके वदले मुँह माँगा दाम मिलेगा।"

"मैं उसे किसी भी दाम पर वेंचना नहीं चाहता। हजूर, मैं खुद भी तो आपही की जायदाद हूँ।"

ज़मींदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया—"तुम्हारा लगान माफ़ कर दूँगा।"

ज़ीवन ने नकारात्मक उत्तर दिया।

ज़मींदार इस पर भी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया—"तुम्हें यह बैल मुझे बेंच देना होगा।"

जीवन चुप रहा।

ज़मींदार ने फिर कहा—"सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और उपाय से दोगे?"

जीवन को भी कुछ आवेश आ गया। उसने काँपती हुई आवाज में कहा—"हरगिज नहीं।"

ज़मींदार ने कहा—"अच्छा, जाओ।"

इस दिन के बाद से अभागे जीवन पर जमींदार ने सख़्ती करना शुरू किया। उससे कठिन बेगार ली जाने लगी। बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में लगा रहना पड़े। कभी कभी अकेले गोरा को ही बेगार में माँग लिया जाता था। जीवन के दरिद्र परिवार पर यह एक नई आफ़त आ खड़ी हुई। परन्तु फिर भी जीवन ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी किस्मत के भरोसे जीवन यह सब अत्याचार सहने लगा।

(४)

जंगल से लकड़ियाँ काट कर गांव की तरफ़ लौटते हुए जीवन काँप उठा। आसमान अचानक काले काले बादलों से घिर आया था। जीवन को जिस बात का भय था, आख़िर वही हुई। इस चौमासे के दिनों में गाँव से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार करके लकड़ियाँ काटने जाना सचमुच एक बड़े जोखिम

का काम था। बरसात के कारण नाले का कोई विश्वास नहीं था, वह न जाने कब भर कर बहने लगे। आज प्रातःकाल लखपतराय ने जीवन को इसी जंगल से बेगार में लकड़ियाँ काट लाने का आदेश दिया था। जीवन जब घर से चला था तब आस्मान साफ़ था, और नाले में भी बहुत कम पानी था। परन्तु साँझ के समय ज्यों ही गड्डे में लकड़ियाँ भरकर वह लौटने को तय्यार हुआ, त्यों ही इन्द्र देवता की सेना ने एक साथ आकाश-मण्डल पर चढ़ाई कर दी।

जीवन ने रास हिलाकर गोरे को भागने का आदेश दिया। बरसाती नाला इस स्थान से चार-पाँच फ़र्लांग ही दूर था। जीवन की इच्छा थी कि वह जिस-किसी तरह भाग कर गड्डे सहित इस नाले के पार पहुँच जाय, उसके बाद देखा जायगा। परन्तु इस समय तक वर्षा बड़े जोर से शुरू हो गई थी नाले के रेतीले किनारे पर पहुँच कर जीवन ने बड़े दुःख के साथ देखा कि नाला खूब भर कर बह रहा है। जीवन निराश हो गया। अब कई घण्टे तक इसी पार बैठे रहने को वह बाध्य था। वर्षा की बौछार जीवन के शरीर पर खुले रूप में पड़ रही थी, इसलिए गड्डे से उतरा। उसने गोरे को गाड़ी से खोल कर किनारे की हरी हरी घास चरने के लिये छोड़ दिया। इसके बाद गड्डे की लकड़ियों को उसने कुछ ऐसे ढंग से रक्खा कि उसके अन्दर एक खोह सी बन गई। इस खोह के ऊपर अपनी चादर फैलाकर, वर्षा से बचने के लिए जीवन अन्दर बैठ गया।

सहसा गर्दन उठाकर गोरा एक बार बड़े ज़ोर से गरज उठा।

गोरा की यह गरज सुन कर जीवन भय से सिहिर उठा। धड़कते हुए दिल से उसने अपनी खोह में से सिर बाहर निकाला। देखा, गोरा अब भी पहिले-ही की तरह निश्चिन्तता से हरी हरी घास चर रहा है। वर्षा इस समय भी कम नहीं हुई। नाले के मटियाले पानी में वर्षा की बड़ी बड़ी बूँदें पड़कर उसे विक्षुब्ध कर रही हैं। इन बूँदों की मार से मानों वह नाला बौखला-सा उठा है। जीवन ने जंगल की तरफ मुड़कर देखा—चारों ओर सन्नाटे का राज्य है। केवल वर्षा पड़ने की साँय साँय आवाज़ इस निस्तब्धता को भंग कर रही है। जंगल के हरे हरे वृक्ष वर्षा में एक साथ चुपचाप स्नान कर रहे हैं। जीवन ने फिर से अपना सिर खोह में छिपा लिया। इस नीरव सन्नाटे में उसे कुछ कुछ भय-प्रतीत होने लगा।

थोड़ी देर में बादल फट गये। वर्षा बन्द हो गई। पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष निकल आया। सूर्य डूबने में अब अधिक समय नहीं रहा था। सूर्य की अन्तिम किरणों ने बादलों में अनेकों रंग पोत दिये थे। उनके प्रतिबिम्ब से बरसाती नाले का पानी भी पिघले हुए सोने की उज्वल धार के समान प्रतीत हो रहा था। जंगल में मोर बोलने लगे। प्रकृति का सन्नाटा भंग हो गया। चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय हो उठा। परन्तु बेगार में पकड़े गये जीवन का ध्यान इन दृश्यों की ओर नहीं था। वह बड़ी उत्कण्ठा से नाले का पानी कम हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे नाले का पानी भी उतर गया। जीवन की अब जान में जान आई। गोरा को गड्डे में जोत कर फिर से अपनी

खोह में आ बैठा, और रास हिला कर गोरा को चलने को आज्ञा दी। सामने सूर्य अस्त हो रहा था।

किनारे के उस हरे मैदान से उतर कर गोरा नाले के रेतीले तट पर पहुँचा। परन्तु पानी के निकट पहुँचते ही गोरा किसी चीज़ को देख कर सहसा चौंक उठा। उसके पैर क्रिया-शून्य हो गये। गाड़ी रुक गई।

जीवन फिर से काँप उठा। डरते डरते खोह में से उसने अपना मुँह बाहर निकाला। नाले की ओर देखते ही उसके होश गुम हो गये। उसने देखा—उत्तर की ओर गड्डे से करीब २० गज़ दूर ही, एक बड़ा-सा शेर खड़ा है और वह गड्डे की ओर देख कर गुर्रा रहा है।

अगले ही क्षण शेर बड़ी जोर से गरज उठा। उसकी गरज समीपस्थित पहाड़ी के साथ टकराकर गूँज उठी। पास के जंगल में फिर से सन्नाटा छा गया।

जीवन उसी प्रकार अनिमेष नेत्रों से शेर की तरफ़ देखता रहा। परन्तु शेर ने अभी तक उसकी तरफ नहीं देखा था, वह गोरा के श्वेत-श्वेत और मोटे-ताजे जिस्म को देख कर गुर्रा रहा था। शेर की भयङ्कर गरज सुनकर गोरा काँप उठा। वह बड़े करुण स्वर में चिल्लाया—वाँ! वाँ!!

इसी समय शेर धीरे-धीरे, बड़ी शान से कदम बढ़ाता हुआ गोरा की तरफ़ बढ़ा। जीवन इस समय भी खोह से गर्दन बाहर निकाले रख कर शेर की ओर देख रहा था। यदि वह

अब भी चाहता तो खोह में छिपकर अपनी जान बचा सकता था।

शेर को अपनी तरफ़ बढ़ता हुआ देखकर वह अबोध जानवर अत्यधिक करुण-स्वर में फिर चिल्लाया—'बाँ! बाँ!!

गोरा का यह करुण-स्वर सुन कर जीवन सहसा विचलित हो उठा। उसे स्मरण आया—आज से दो वर्ष पूर्व गोरा की यही करुण 'बाँ' 'बाँ' सुनकर ही मैंने उसकी गीदड़ों से रक्षा की थी, क्या आज मैं उसे शेर के मुँह से नहीं बचा सकता?

जीवन कूदकर गोरा की पीठ पर लिपट गया। अगले ही क्षण में वह शेर एक बार फिर बड़े जोर से गरज कर गोरा पर झपटा, परन्तु उसके तेज नाखून गोरा के भरे हुए शरीर में न धँसकर जीवन की सूखी हुई पीठ में जा धँसे।

शेर ने इसी शिकार को पर्याप्त समझा। वह दरिद्र परन्तु आश्रितवत्सल जीवन की पवित्र देह को लेकर जंगल में प्रविष्ट हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीवन के रिश्तेदार उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे। गोरा अब भी उसी तरह निश्चल भाव से खड़ा था। गड्ढे की खोह के ऊपर जीवन की मैली चादर अब भी उसी तरह फैली हुई थी। गोरे की पीठ पर खून के बड़े बड़े दाग़ और रेत पर शेर के पंजों के बड़े बड़े निशान देखकर उन्हें सारी घटना समझने में देर न लगी।

   

जीवन का यह आत्म-बलिदान आस पास के सब गाँवों

प्रसिद्ध है। लोग उनका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं। गोरा आज भी जीवित है, परन्तु अब वह उतना मज़बूत नहीं रहा। लोग कहते हैं कि स्वामी के शोक में वह प्रति दिन घुलता चला जा रहा है। लखपतराय भी अपने व्यवहार पर शर्मिंदा है। उस दिन के बाद से फिर कभी उसने गोरा के लिए आग्रह नहीं किया।

मन्मथनाथ गुप्त

# मदु मल्लोर

केन्द्रीय जेल के कैदियों में उस दिन एक खबर से बड़ी सनसनी फैल गई। जेल में रोज नये नये कैदी आते रहते थे, उन्हीं परिचित जुर्मों में—चोरी, डकैती, राहजनी, उठाईगीरी, बलात्कार इत्यादि। समय समय पर कुछ राजनीतिक कैदी भी आते रहते थे। अब भी दो चार बम पार्टी के लोग जेल में पड़े ही थे। कांग्रेसी आते थे और फिर साल छः महीने में छूटकर चले जाते थे। हाँ, बम पार्टी वाले कुछ टिकते थे।

मामूली कैदियों को राजनीतिक क़ैदियों में विशेष दिलचस्पी इस कारण होती थी कि वे रहस्यवादी तरीके से यह कल्पना करते थे कि उसके जेल आने के साथ इनको रिहाई का सम्बन्ध था। दिलचस्पी के और भी कारण थे। वे जेल मजबूरी से आते थे, और राजनीतिक कैदी खुशी से आते थे। वे समझते थे कि जेल आने से वे मुँह दिखाने लायक नहीं रहे, और ये लोग जेल आने पर सीना तानकर चलते थे।

खैर, यह जो आदमी जेल में आया था, उसके स लोगों ने जो कुछ सुना, उससे सभी कैदी आश्चर्य में ऐसा तो कभी नहीं सुना गया। बैजू फाटक से आया था। उसने चिल्ला चिल्ला कर अपने मेल के तीन

से कहा—'सुना वलखंडी एक कैदी आया है, जो मर्दुमखोर है।

वैजू पक्का जानता था कि इस शब्द को कोई कैदी नहीं समझेगा, इसलिए जानबूझकर इस शब्द का प्रयोग किया था। स्वयं वह भी घंटा भर पहले इस शब्द को नहीं जानता था। नायब साहब ने उस कैदी का टिकट देखकर कहा था--'अरे, यह तो मर्दुमखोर है। फिर स्पष्टीकरण करते हुए कहा था—'यह आदमी खाता है।'

वैजू पक्का ने तभी याद कर लिया था मर्दुमखोर। उसने वलखंडी से कहा—'एक मर्दुमखोर पकड़ कर आया है।'

वलखंडी ने पास आते हुए अनुनय के स्वर में कहा—'मर्दुमखोर क्या ?'

वैजू के लिए यही तो मौका था सब कैदियों पर अपनी सर्वज्ञता का रौब वैठाने का। आत्मश्लाघा की हँसी हँसते हुए बोला—'यही तो बात है। भई, वह जो आया है, न, वह आदमी खाता था।'

यह बात कहना था कि आसपास के सब कैदी अपना अपना काम छोड़कर उसके पास आ गए। एक छोटी सी भीड़ इकट्ठी हो गई। सब के चेहरे पर उत्तेजना थी। रामदास नामक एक बूढ़े कैदी ने कहा—'जाओ वैजू, तुम हम लोगों को बना रहे हो। आदमी भी कोई खाने की चीज है। दुनिया में इतनी चीजों के रहते हुए आदमी को कौन खायगा ?'

एक बाईस साल की उम्र का पाकेटमार मीरसिंह बीच में

बोल पड़ा—'पर मैंने सुना है कि आदमी का गोश्त बड़ा मीठा होता है।'

वैजू ने उसे डाँटते हुए कहा—'चुप रह बे, बेकार में बकता है। बाबा की बात पहले सुन तो ले।'

रामदास अपने जमाने में एक प्रसिद्ध डाकू था। वह इस जेल का सबसे पुराना कैदी था। सब कैदी उसकी इज्जत करते थे, बोला—'मुझे जेल में रहते तेईस साल हो गए, कई जेल देख चुका; पर ऐसा कोई कैदी तो नहीं देखा था।'

सबने बूढ़े की बातों का समर्थन किया। अब सब लोग वैजू पक्का को उस कैदी के विषय में पूछने लगे—देखने में कैसा है, क्या पहने हैं, इत्यादि ? यहाँ तक कि वैजू उकता गया। वह एकाएक भीड़ में से निकलते हुए बोला—'अभी थोड़ी देर में यहीं आता होगा, जी भर कर देख लेना। मैं जाता हूँ फाटक पर मेरी उधर ही ड्यूटी है।'

वैजू तो चला गया, पर कैदी उसी के सम्बन्ध में आलोचना करने लगे। मीरसिंह पाकेटमार ने सब को सुनाते हुए कहा—भाई, मैं तो अब यहाँ नहीं रहने का। बीमार बनकर अस्पताल चला जाऊँगा, कहीं वह मर्दुमखोर रात को मुझी को खा जायगा तो ?'

यही बात सब सोच रहे थे। पर कई कैदी बड़े अक्कड़खाँ होते हैं। ऐसा ही एक १० साल की सजा पाया हुआ कैदी सहदेव बोला—'हाँ, तू ही एक खूबसूरत है कि तुझे ही खायगा और अस्पताल तो तेरी ससुराल है कि मुँह से बात निकली

तू वहाँ गद्दे पर लेटा हुआ नजर आयगा। बेटा, यह जेलखाना है, जेलखाना।'

मीरसिंह ने कहा—'खैर, अस्पताल न सही, कोठरी में जाना तो अपने वश में है। जिस दिन वार्डर को गाली दे दी, कोठरी पहुँच जाऊँगा।'

सहदेव बोला—'कोठरी कोई नवाबी थोड़े ही है, चार दिन में सब रग पट्ठे ढीले हो जायँगे।'

'हो जायँ, पर सही सलामत जिन्दा तो रहूँगा। यहाँ किसी दिन रात को उसे भूख लगी, और उसने मुझे खाना शुरू किया, तो बस कहीं का न रहूँगा। अभी तो चाचा; कुछ खेला खाया है नहीं। तुम्हारी तरह कब्र में पाँव लटकाए थोड़े ही बैठा हूँ कि चलो, मरने का कोई न कोई बहाना होगा ही—मर्दुमखोर खा जाय, तो क्या हर्ज है ? कुछ पुन्य ही होगा कि एक एक भूखे का पेट तो भरेगा।'

सहदेव की उम्र ऐसी कोई अधिक नहीं थी,अधिक से अधिक ४५ थी। इसलिए कब्र में पाँव लटकाने की बात सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया। बोला—'मरना जीना तो भगवान् के हाथ में है। सैकड़ों बूढ़े बैठे रहते हैं और कल के लौंडे मर जाते हैं। पर मुझे यह पसन्द नहीं कि कोई कायरपन दिखावे। मर्दुमखोर है, तो कोई नाहर थोड़े ही है। खा गया होगा किसी अपाहिज को अकेले में पाकर। यहाँ तो दोनों खूब डंड पेलते हैं। मर्दुमखोर तो मर्दुमखोर, एक दफे शेर भी आ जाय, तो उसको भी मार गिराऊँ।'

कहने को तो वह ऐसा कह गया, पर भीतर से उसका हृदय भी धुकुर धुकुर कर रहा था। कौन भला यह पसन्द कर सकता था कि उसे खा डाला जाय। यों तो ये कैदी निडर थे, पर मर्दुमखोर के नाम से सभी कुछ न कुछ घबरा रहे थे।

आखिर दो घंटे में वह मर्दुमखोर बैरक में आ भी गया। बैजू पक्का और वार्डर साथ में थे। सब कैदी एक होकर उसे घेर कर खड़े हो गए। वार्डर ने बहुतेरा कहा—'जाओ सब अपने अपने काम पर, यहाँ खड़े होने का कोई काम नहीं।'

इस पर कैदी कुछ पीछे हट गए। वृत्त और बड़ा हो गया, पर कोई हटा नहीं। सब लोग मर्दुमखोर को आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहे थे। पर उसे देख कर सब लोग निराश हुए। कहाँ, इसमें तो कोई भी बात अनोखी नहीं थी। साधारण मनुष्यों की तरह आँख, कान, नाक। हाँ, दाढ़ी कुछ बढ़ी हुई थी। पर ऐसी तो कई कैदियों की रहती है। खास बात क्या है? उसे सब लोग देख रहे थे, वह किसी को नहीं देख रहा था। सिर नीचे किए हुए था। पलकें भी धीरे धीरे गिर रही थीं। पीला इतना था कि मालूम होता था, चिता पर से किसी मुर्दे को लाकर खड़ा कर दिया गया हो। पर आखें अजब तरीके से अलसाई हुई, चुभी हुई सी, पर खूँख्वार थीं, जैसी मशान के कुत्तों की होती हैं।

बैजू ने सब कैदियों पर अपना रोब गालिब करने के लिए उन्हीं लहजों में कहा, जिनको जिस लहजे में नायब साहब ने अभी थोड़ी देर हुए बैजू तथा अन्य पक्कों और वार्डरों से कहा था। बोला—'देखो जी, इसके टिकट पर न मालूम क्या क्या

खुराफात लिखा है। इसे आदमियों में न रखा जाय, इस पर दिन रात देखरेख रखी जाय, वगैरह वगैरह। पर यहाँ इससे कौन डरता है? इसे मामूली कैदी की तरह रखा जाय!'

वार्डर ने देखा कि वह मुलाजिम है, पक्का कैदी होकर भी उससे बाजी मारे ले रहा है। इसलिए उसने कहा—'जहाँ इससे दस दिन अच्छी तरह चक्की पिसाई, इसका दिमाग ठिकाने आ जावेगा। मर्दुमखोर की मर्दुमखोरी सब भूल जायगी। यहाँ कई ऐसे देख चुके।'

वार्डर की बात सुनकर मर्दुमखोर ने धीरे से आँख उठाकर उसकी तरफ देखा। पता नहीं, उस दृष्टि में क्या बात थी। वार्डर यंत्र-चालित की तरह एक कदम पीछे हट गया।

बैजू ने कहा—'डाक्टर ने तो इसे चक्की के लिए पास नहीं किया, बान बान बँटेगा।'

वार्डर बोला—'हाँ, बान ही बँटे, कुछ तो करना पड़ेगा।'

मर्दुमखोर को बैरक के छुट्टीवान के सुपुर्द कर वार्डर चला गया। पक्के को तो इधर ही रहना था, वह यहीं रहा।

छुट्टीवान ने मर्दुमखोर को बता दिया कि यह तुम्हारे सोने की जगह है और एक कब्र सा चबूतरा उसे दिखा दिया। मर्दुमखोर उस कब्रनुमा चबूतरे को देख कर जैसे कुछ हँसा, पर कुछ बोला नहीं। उसने देखा कि बैरक में सौ से ऊपर इस तरह की कब्रें हैं। वह बनाए हुए चबूतरे पर बैठ गया।

छुट्टीवान तथा एक बदलती हुई भीड़ उसके साथ लगी रही। पर उसने किसी की तरफ ध्यान नहीं दिया। आँखें मूँद लीं

और ऊँघने लगा। छुट्टीवान ने कहा कि उससे कुछ बात करे। बोला—'ए जी, सुनते हो, तुम्हारा नाम क्या है?'

कुछ उत्तर नहीं।

'ए जी मर्दुमखोर, तुम्हारा नाम क्या है? तुम अभी से ऊँघते क्यों हो?'

मर्दुमखोर शब्द से वह व्यक्ति चौंक पड़ा। फिर उसने आँखें खोलीं, पर पूरी आँखें खुलने के पहले ही फिर बन्द कर लीं। और पहले की तरह ऊँघने लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

सब कैदी सब तरकीबें करके हार गए, पर कोई मर्दुमखोर को बुलवा न सका। क़ैदियों ने इस पर यह सिद्धान्त रखा कि यह गूँगा है। पर दूसरे लोगों ने कहा कि यह गूँगा हर्गिज़ नहीं है, किसी कारण से नहीं बोलता। यद्यपि वह बोलता नहीं था; पर उसे जो भी कहा जाता था, उसका ठीक पालन करता था। काम के समय काम करता, खाने के समय खाता, सोने के समय सोता।

कैदी उससे बहुत कुछ अद्‌भुत बातों की आशा करते थे, पर वे निराश हुए। फिर भी सब चौकन्ने रहते थे। मीरसिंह सचमुच अस्पताल चला गया था। पर सहदेव जैसे लोग कहने लगे थे—'बिल्कुल गौ आदमी है। किसी दारोगा ने नामवरी के लिए इसका झूठ मूठ चालान कर दिया होगा। यह साला आदमी क्या खायगा? इसे बाहर छोड़ दिया जाय, तो गाँव के कुत्ते उल्टे इसे ही खा जायँ।"

एक सिद्धान्त यह भी बना था कि यह अघोरी है। कोई

सिद्ध है। ऊँघता नहीं, बल्कि कालीमाई का ध्यान करता है। जो कुछ भी हो, उसके सम्बन्ध में तरह तरह के मत बन गए थे। उसका नाम तो लोगों ने मर्दुमखोर रख ही दिया था। इसी नाम से लोग उसका उल्लेख करते थे। यों टिकट पर उसका कोई और नाम भी था।

क़ैदियों ने इस बात को मान सा लिया था कि मर्दुमखोर कभी बोलेगा नहीं। उसके गूँगे होने के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चित से हो चुके थे। उसके विषय में क़ैदियों की दिलचस्पी कुछ घटती सी जा रही थी। अब उससे कोई डरता नहीं था। अवश्य मीरसिंह (जो अस्पताल से लौट आया था) जैसे आदमी अब भी कहे जा रहे थे कि एक न एक दिन यह गुल खिलायेगा, देखते रहो। पर इन बातों पर कोई ध्यान नहीं देता था। मर्दुमखोर को लोग एक सीधा सादा कैदी समझते थे।

पर एक दिन एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई। बैरक में एक नया कैदी आया था। लोगों ने देखा कि बैरक के हाते के एक किनारे खड़े होकर मर्दुमखोर उस नये कैदी से बातें कर रहा है। बातें भी क्या अपनी ही हिन्दी में। पहले एक ने देखा, उसने दो चार को बुलाया। इस प्रकार पास ही एक छोटी सी भीड़ जमा हो गई। यहाँ तक कि वार्डर भी आ गया; मानों बात करना कोई अप्राकृतिक बात हो! जब मर्दुमखोर ने यह क़ैफियत देखी, तो उसने बात बन्द कर दी, और वह एक तरफ को चला गया।

लोगों ने चाहा था कि मर्दुमखोर से कुछ पूछें; पर वह तो

बिना किसी की बात सुने ही चला गया, मानों वह बहरा हो। तब लोगों ने उस नये क़ैदी को पकड़ा। सहदेव ने आगे बढ़कर पूछा—"क्यों सुलतान, तुम इसे बाहर से जानते हो ?"

"नहीं"—उस क़ैदी ने कहा।

सब लोग उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। सहदेव ने झिड़क कर पूछा—"तो फिर तुमसे बात क्या कर रहा था ?"

सुलतान बोला—"मैं तो इसे नहीं जानता, पर यह मुझे जानता है। बातों से मालूम होता है कि हमारी ही तरफ का है।"

सुलतान के इस वक्तव्य से क़ैदियों को बड़ी निराशा हुई। एक सुराग हाथ लगकर भी निकला जा रहा था ! सबने बारी बारी से उससे पूँछ-ताछ की, पर कोई नई बात मालूम नहीं हुई। तब वे निराश होकर बैठ गए। एकरस कैदी जीवन वैसे ही चलने लगा।

क़ैदियों में यह आशा थी कि शायद मर्दुमखोर फिर सुलतान से बात करे, पर उसने इस विषय में भी लोगों को निराश किया। क़ैदियों के सिखाने पर सुलतान ने खुद जाकर उससे बात करने की चेष्टा की; पर मर्दुमख़ोर ने, जैसा कि उसकी आदत थी, मुड़कर भी उसकी तरफ नहीं देखा। सुलतान ने पूछा—'बाबा तुम कौन हो ? बातचीत से मालूम होता है, हमारी ही तरफ़ के कोई हो !'

यह प्रश्न सुन कर मर्दुमख़ोर के चेहरे पर क्रोध की रेखाएँ प्रकट हो कर विलीन हो गईं; पर अन्त तक वह कुछ बोला

नहीं। लोगों ने उसके सम्बन्ध में जानने की इच्छा छोड़ दी।

जब नये आदमी को आए हुए दो महीने हो रहे थे, उस समय एकाएक बैरक के लोग बाहर के पहरेदार के चिल्लाने से जग पड़े। जब सब क़ैदी बैरक के पाख़ाने में पहुँचे, तो उन्होंने ऐसा दृश्य देखा, जिससे सब के रोंगटे खड़े हो गए। मर्दुमखोर ने सुलतान को मार डाला था और उसका सिर उधड़ा हुआ सारे पाख़ाने में फैला हुआ था। मर्दुमखोर के मुँह से खून निकल रहा था। उसकी आँखें लाल लाल हो रही थीं। उसके हाथ में एक छोटा सा चाकू था। यह दृश्य देख कर क़ैदियों को तो गश आ गया।

फौरन पगली बजी, और बड़े से लेकर छोटे तक सब जेल कर्मचारी, जो जिस हालत में थे, उसी हालत में दौड़ आए। बैरक का ताला खोला गया। क़ैदी जोड़े जोड़े बैठाए गए और मर्दुमखोर पकड़ लिया गया। उसने जरा भी प्रतिवाद नहीं किया, सीधे से गिरफ्तार हो गया। उसकी तलाशी ली गई पर कुछ नहीं निकला। वह छोटी सी छुरी तो सामने ही पड़ी थी।

फौरन उस बैरक को खाली कर कैदियों को अन्य बैरकों में बाँट दिया गया। फिर उस बैरक में ताला डाल कर डबल पहरा बैठा दिया गया। सुलतान की लाश जहाँ की तहाँ पड़ी रही। पुलिस के आने की प्रतीक्षा में लाश को वैसा ही छोड़ दिया गया। मर्दुमखोर को पीछे से हथकड़ी डालकर एक खाली कोठरी में बन्द कर दिया गया।

सबेरे जब पुलिस आई, तो पुलिस वाले जेलर को दोष

देने लगे कि मर्दुमखोर को कोठरी में रखना चाहिए था। जेलर कह रहा था—'मैं क्या करता साहब, इसके टिकट पर जहाँ यह लिखा था कि यह आदमी का गोश्त खाने के कारण कैद किया गया है, वहीं यह भी तो लिखा था कि हवालात में इसने तीन बार खुदकशी की कोशिश की है। ऐसे झुकाववाले क़ैदी को मैं कोठरी में कैसे रखता ?'

मर्दुमखोर को बुलाया गया। उसके मुँह पर ख़ून लगा हुआ था। चेहरा देख कर डर मालूम होता था। हथकड़ियां खोल दी गई। अब उसकी पूँछ ताछ शुरु हुई। दारोगाजी वहीं थे, जिन्होंने उसे सजा कराई थी। बोले—'यहाँ भी आकर पाजीपन से बाज़ नहीं आए ?' कहकर दूसरी तरफ़ देखते हुए जेलर से बोले—'मालूम होता है, आदमी का गोश्त बहुत अच्छा होता है। जिस के मुँह लग गया, उससे छूटता नहीं।'

जेलर ने कहा—'हाँ, कुछ ऐसा ही मालूम होता है।

दारोग़ा ने फिर मर्दुमखोर से कहा—'पर बाहर तो तुम मुर्दों का गोश्त खाते थे, यहाँ आकर कौन सी नई लत पाल ली ? यहाँ तो तुमने जिन्दे आदमी को खा डाला !'

दारोग़ा मर्दुमखोर से कुछ उत्तर की आशा नहीं रखते थे; पर यह क्या, मर्दुमखोर हिला और बोला—'हुजूर, मुर्दे खाकर इसी की आदत डाल रहा था।'

सब लोग दंग रह गए। एक तो मर्दुमखोर कभी बोलता नहीं था, वह बोला; दूसरे उसने ऐसी बात कही, जिससे सब चक्कर में आ गए। दारोग़ा ने एक पान जेलर को बढ़ाते हुए

नहीं। लोगों ने उसके सम्बन्ध में जानने की इच्छा छोड़ दी।

जब नये आदमी को आए हुए दो महीने हो रहे थे, उस समय एकाएक बैरक के लोग बाहर के पहरेदार के चिल्लाने से जग पड़े। जब सब क़ैदी बैरक के पाख़ाने में पहुँचे, तो उन्होंने ऐसा दृश्य देखा, जिससे सब के रोंगटे खड़े हो गए। मर्दुमख़ोर ने सुलतान को मार डाला था और उसका सिर उधड़ा हुआ सारे पाखाने में फैला हुआ था। मर्दुमख़ोर के मुँह से ख़ून निकल रहा था। उसकी आँखें लाल लाल हो रही थीं। उसके हाथ में एक छोटा सा चाकू था। यह दृश्य देख कर क़ैदियों को तो नशा आ गया।

फ़ौरन पगली बजी, और बड़े से लेकर छोटे तक सब जेल कर्मचारी, जो जिस हालत में थे, उसी हालत में दौड़ आए। बैरक का ताला खोला गया। क़ैदी जोड़े जोड़े बैठाए गए और मर्दुमख़ोर पकड़ लिया गया। उसने ज़रा भी प्रतिवाद नहीं किया, सीधे से गिरफ़्तार हो गया। उसकी तलाशी ली गई पर कुछ नहीं निकला। वह छोटी सी छुरी तो सामने ही पड़ी थी।

फ़ौरन उस बैरक को ख़ाली कर कैदियों को अन्य बैरकों में बाँट दिया गया। फिर उस बैरक में ताला डाल कर डबल पहरा बैठा दिया गया। सुलतान की लाश जहाँ की तहाँ पड़ी रही। पुलिस के आने की प्रतीक्षा में लाश को वैसा ही छोड़ दिया गया। मर्दुमख़ोर को पीछे से हथकड़ी डालकर एक खाली कोठरी में बन्द कर दिया गया।

सबेरे जब पुलिस आई, तो पुलिस वाले जेलर को दोष

देने लगे कि मर्दु मखोर को कोठरी में रखना चाहिए था। जेलर कह रहा था—'मैं क्या करता साहब, इसके टिकट पर जहाँ यह लिखा था कि यह आदमी का गोश्त खाने के कारण कैद किया गया है, वहीं यह भी तो लिखा था कि हवालात में इसने तीन बार खुदकशी की कोशिश की है। ऐसे झुकाववाले क़ैदी को मैं कोठरी में कैसे रखता ?'

मर्दु मखोर को बुलाया गया। उसके मुँह पर खून लगा हुआ था। चेहरा देख कर डर मालूम होता था। हथकड़ियां खोल दी गईं। अब उसकी पूँछ ताछ शुरु हुई। दारोगाजी वहीं थे, जिन्होंने उसे सजा कराई थी। बोले—'यहाँ भी आकर पाजीपन से बाज नहीं आए ?' कहकर दूसरी तरफ देखते हुए जेलर से बोले—'मालूम होता है, आदमी का गोश्त बहुत अच्छा होता है। जिस के मुँह लग गया, उससे छूटता नहीं।'

जेलर ने कहा—'हाँ, कुछ ऐसा ही मालूम होता है।

दारोगा ने फिर मर्दु मखोर से कहा—'पर बाहर तो तुम मुर्दों का गोश्त खाते थे, यहाँ आकर कौन सी नई लत पकड़ ली ? यहाँ तो तुमने जिन्दे आदमी को खा डाला !'

दारोगा मर्दु मखोर से कुछ उत्तर की आशा नहीं रखते थे, पर यह क्या, मर्दु मखोर हिला और बोला—'हुजूर, हुँह बाहर इसी की आदत डाल रहा था।'

सब लोग दंग रह गए। एक तो मर्दु मखोर कभी बोलता नहीं था, वह बोला; दूसरे उसने ऐसी बात कही, जिससे सब चक्कर में आ गए। दारोगा ने एक बार जेलर की तरफ देखते हुए

और एक खुद खाते हुए कहा—'काहे की आदत, साफ़ साफ़ कहो ?'

'यही आदमी खाने की आदत।'

'आदमी भी कोई खाने की चीज़ है ?'

मर्दुमखोर ने बिना कुछ प्रयास के ही उत्तर दिया—'क्यों नहीं, हजूर ? अगर जानवरों में कोई खाने लायक़ है, तो वह आदमी ही है। बकरा, मुर्गा या मछली किसका क्या नुकसान करते हैं; पर हुजूर आदमी न कर सके, ऐसा कोई बुरा काम नहीं।'

इतना कहकर मर्दुमखोर अप्रत्याशित रूप से सिसकने लगा। जब उसकी सिसकियाँ बन्द हुईं, तो उसने धीरे धीरे अपने सम्बन्ध में जो रोमांचकारी कहानी बताई, वह यों है :

मर्दुमखोर का असली नाम तेजराम था। वह वर्षों से सपरिवार बम्बई में रहता था। वहाँ कोई छोटी मोटी दुकान थी। वर्षों के बाद सोचा कि अपने गांव जाकर देखें कि वहां क्या हो रहा है। इसके अलावा इच्छा थी कि गँवई गाँव में कुछ ज़मीन खरीदकर एक छोटा सा पक्का मकान बनावे। इसी टोह में था। उसके परिवार में उसके अलावा उसकी स्त्री और दो छोटे छोटे बच्चे थे।

एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ अपने पुराने घर के सामने खड़ा था कि सामने से एक नौजवान गुज़रा। वह बहुत अच्छे कपड़े पहने हुए था—रेशम का बुशशर्ट और धोती। उसके पैरों में क़ीमती जूते थे। उसके पीछे पीछे पाँच छै लट्ठधारी थे।

एक के पास शायद पिस्तौल भी थी। बाद को मालूम हुआ कि यह व्यक्ति उधर का जमींदार था। खैर, कोई बात नहीं। बम्बई में उसकी दुकान के सामने से बड़े बड़े सेठ और साहब रोज़ ही निकलते थे। उसने परवाह नहीं की।

पर थोड़ी ही देर में ज़मींदार का एक कारिन्दा आया, तो उसका माथा ठनका। कारिन्दे ने बिना किसी भूमिका के कहा—'तेरा ही नाम रामतेज है ? चल, तेरा बुलौवा है।'

राम तेज कुछ सोचने लगा कि जाय या नहीं; पर उस कारिन्दे ने रुखाई के साथ कहा—'चल, इधर उधर क्या देखता है ? सीधे से चल, नहीं तो बाँधकर ले चलूँगा। मेरा नाम कल्लन है।'

रामतेज अकड़ गया, बोला—'कोई चोर बदमाश थोड़े ही हूँ, नहीं जाता। तू बड़ा बना है तीसमारखां। गवर्नमेंट का राज है या तेरा ?'

इस पर कहा-सुनी होगई। कल्लन उसे मारने के लिए आगे लपका। गाँव वाले आ गए। बीच-बचाव हो गया। यह तय हुआ कि कल्लन चला जाय, रामतेज अभी खुद ज़मींदार के यहाँ पहुँचेगा। यही हुआ। रामतेज खुद गया। उसने जाकर ज़मींदार को सलाम किया।

जमींदार ने कुछ नहीं कहा, पर कल्लन बोला—'हुजूर, बम्बई से कुछ रुपये कमाकर आया है, इसपर इसे
हो गया है। एकदम सरकश हो गया है।

गया, तो लगा हुजूर की शान में गुस्ताखी के अलफ़ाज़ बकने।'

रामतेज ने कहा—'मैंने तो कुछ नहीं कहा।'

'ज़मींदार ने कल्लन की बातों पर ध्यान दिया, न रामतेज की सफाई पर। नशे में उसकी आँखें लाल हो रही थीं। बोला—'असली बात पर आओ।'

कल्लन गला साफ़ करके बोला—'और हुजूर, यह बम्बई से एक मुसम्मान को भगाकर लाया है, वह बहुत हसीन है, कोई सेठानी है।...'

रामतेज ने बहुतेरा कहा कि वह स्त्री सेठानी नहीं, इधर के ही एक गांव की लड़की है और उसकी शादी में इस गाँव के कई आदमी—जैसे लाखनपाल, हरनाम, सुखई पांडे—मौजूद थे; पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। उसे पकड़ कर बग़ल के एक अँधेरे कमरे में बन्द कर दिया गया। थोड़ी देर में उसकी स्त्री अपने बच्चों समेत पकड़ मँगाई गई। वह बेचारी बच्चों के साथ घबराई हुई आई। दुष्टों ने उससे आकर कहा था—तुम्हारे पति बेहोश हो गए हैं, जल्दी चलो, वे तुम्हें और बच्चों को देखना चाहते हैं। वह आकर कहने लगी—'कहां हैं वे?'

पर वहाँ उसकी बातों का उत्तर कौन देता? रामतेज अपनी क़ैद से यह सारी बात देख रहा था, पर क्या करता। ज़मींदार ने कल्लन से इशारा किया। वह रामतेज की स्त्री से बोला—'देखो, हमें पता लगा है, तुम बम्बई की सेठानी हो और रामतेज तुम्हें भगा लाया है।'

वह बेचारी बोली—'नहीं, नहीं, मैं कोई सेठानी नहीं हूँ। वे कहाँ हैं ?

वे कहते रहे, यह सेठानी है, और वह कहती रही, वह सेठानी नहीं है। अन्त में कल्लन बोला—'जब तुम उसके साथ रह सकती हो, तो हुज़ूर के साथ भी रह सकती हो। देखो, हुज़ूर कितने अच्छे हैं, तुम को मालामाल कर देंगे।'

रामतेज की स्त्री समझ गई कि गुण्डों से पाला पड़ा है। वह घर जाने के लिए कहने लगी। पर वहाँ उसे घर कौन जाने देता ? वह पकड़ ली गई, और दुष्टों ने उसे तथा ज़मींदार को बग़ल के एक दूसरे कमरे में बन्द कर दिया। बच्चे बुरी तरह रोने लगे। थोड़ी देर में ज़मींदार हाँफता हुआ बाहर निकला, बोला—'कल्लन, इसने तो मेरे हाथ दांतों से काट लिए, राक्षसी है, कोई तरकीब करो।'

कल्लन बोला—'हुज़ूर, अभी करता हूँ। बदमाश औरत है, उसी पेंच से कब्जे में आयेगी। कहकर उसने रामतेज की स्त्री को बाहर निकाला। फिर उसके छोटे बच्चे का गला दबाता हुआ बोला—'अभी इसे मारता हूँ, नहीं तो हुज़ूर की बात पर राज़ी हो जा।'

रामतेज की स्त्री बच्चे को बचाने दौड़ी, पर पकड़ ली गई। इतने में एक दूसरे कारिन्दे ने शायद यह दिखाने के लिए कि वह कल्लन से पीछे नहीं है, लपका, और उसने बड़े बच्चे का गला उसी तरह दबाया। दोनों बच्चों की आँखें निकल सी आईं। रामतेज की स्त्री बुरी तरह चिल्ला रही थी।

कल्लन बोला—'राजी हो जा, तो बच्चे छोड़ दिये जायेंगे, नहीं तो अभी मार डालता हूँ।'

स्त्री बोली—'हाँ, हाँ, छोड़...'

कल्लन बोला—'ठीक बोल, कहीं फिर बदमाशी तो नहीं करेगी ?'

स्त्री रो कर बोली—'नहीं।'

कल्लन बोला—'तो जा...'

स्त्री उसी कमरे में गई। पीछे पीछे डरते हुए जीमींदार साहब गए। इधर जब वे लोग चले गए, तो मालूम हुआ कि छोटा बच्चा मर गया। तब कल्लन बोला—'यह तो बड़ा बुरा हुआ। फिर सोच कर बोला—'कोई बात नहीं। अभी तो कइयों को मारना पड़ेगा।'

इतने में उस कमरे से जीमींदार साहब ने शराब मँगवाई। शराब उसी कमरे में रहती थी, जिसमें रामतेज बन्द था। एक आदमी जल्दी से शराब की बोतल निकाल कर चला गया। उसने रामतेज को नहीं देखा। गड़बड़ में दरवाजा बाहर से बिना बन्द किए वह चला गया। अब रामतेज दरवाजे के पास खड़ा होकर सोच रहा था कि उसे क्या करना चाहिए।

कल्लन कह रहा था—'अब यह मर गया, तो इस बड़े लड़के को भी मारना पड़ेगा, नहीं तो यह बाद को गवाह बनेगा।' फिर सोच कर बोला—'मेरी तो राय यही है कि बाकी तीनों को भी मार डालो। उस सुसरी को चार छै दिन रखकर मारेंगे पर इसे और उसका क्या नाम है, रामतेज है, उसे अभी

खत्म करो। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। कह देंगे, सब बम्बई चले गए।'

सब कारिन्दों ने दाद दी, बोले—'वाह भई, क्या खूब कही, बम्बई चले गए। कोई शक भी नहीं करेगा। चलो फिर कल करे, सो आज कर···'

वे लोग दूसरे बच्चे को मारने में जुट पड़े। रामतेज समझा कि अब उसकी बारी है। वह दरवाजा खोल कर भाग निकला।

इतने में लोग रामतेज जिस कमरे में था, उसमें पहुँचे। पर उसमें से उसे भागा हुआ पाकर वे लोग उसे खोजने बाहर निकले। रामतेज अभी दो सौ क़दम भी नहीं जा पाया था कि उसने पीछे हल्ला सुना। वह क़ब्रिस्तान के पास था। उसे क्या सूझा कि वह लपक कर एक बड़े पेड़ पर चढ़ गया। खोजने वाले हल्ला करते हुए निकल गए, पर वह डर के मारे पेड़ से नहीं उतरा। खैरियत यह थी कि पेड़ बहुत ऊँचा और घना था और क़ब्रिस्तान होने के कारण कोई उधर से जाता नहीं था।

सात दिन तक रामतेज पेड़ पर चढ़ा रहा। इस बीच में उसने देखा, क्योंकि वहाँ से चारों तरफ एक मील तक अच्छी तरह दिखाई देता था, कि कल्लन उसी रात को बच्चों की लाशें को नदी में डाल आया। फिर चार पाँच दिन बाद वे रात के अँधेरे में एक बड़ा सा कुछ ले जाकर नदी में छोड़ आए। वह निश्चय ही उसकी स्त्री थी। वह सब कुछ देखता रहा; पर जैसे किसी बात से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं रह गया था। वह पर रहता और अपने को एक भूत समझता।

तो पत्ता आदि चबा लेता। अन्त में एक दिन उसने सोचा कि अब उतर चलना चाहिए।

सन्ध्या समय कुछ लोग मुर्दा गाड़ने आए। ऊपर से उसने देखा, जो लोग आए हैं उनके साथ कुछ खाने की चीज़ है। वे ऐन पेड़ के नीचे थे। उसे शरारत सूझी, उसने एक डाल तोड़ कर फेंक दी। नीचे के लोग चौंके। तब उसने एक और डाल फेंकी, फिर उसने खाँसा। खाँसी को सुनकर नीचे के लोग चिल्ला चिल्ला कर क़ुरान के मन्त्र पढ़ने लगे। तब उसने फिर खाँसा। अब तो नीचे के लोग जैसे तैसे मुर्दे पर थोड़ी मिट्टी डाल कर भाग गए। जाते हुए उसने कहा—'मैंने कहा था न, रात को मत आओ, यहाँ जिन रहते हैं।

जब सब लोग चले गए, तो रामतेज उतरा और चारों तरफ खाना ढूँढ़ने लगा। पर कहीं कुछ नहीं मिला, तो उसने मुर्दे को खखोर कर देखा कि वहाँ उसके साथ हो। मुर्दे को टटोलते टटोलते उसके हाथ नरम सा कुछ लगा। चलो डबल रोटी है। मुसलमान इसे बहुत खाते हैं। पर हाथ में क्यों नहीं आ रही है? क्या टाँके लगा कर जोड़ गए हैं? शायद। अच्छी तो ज़ोर लगाया जाय। पर यह तो बहुत बुरी तरह टँका है। अच्छा तो एक, दो, तीन। हाथ में कुछ हिस्सा आया। उसने उसे मुँह में रखा। स्वाद अच्छा नहीं था। पर भूख में स्वाद कौन देखता है? वह खाता गया एक कौर, दो कौर, तीन कौर। जब पेट भर खा गया, तब उसे पता चला कि वह अब तक

जो खा रहा था, वह डबल रोटी नहीं, मुर्दे के शरीर को ही नोंच नोच कर खा रहा था।

जब खा चुका, तो खा चुका। घृणा उसमें रह नहीं गई थी। शायद कोई भी मानवीय भावना रह नहीं गई थी। वह फिर पेड़ पर चढ़ गया। भूत या जिन बन कर रहना उसे पसन्द था, पर मनुष्यों की बस्ती में लौटते हुए अच्छा नहीं मालूम होता था। जब हिम्मत बढ़ी, तो एकाध दिन नदी में पानी पीने भी निकल गया। धीरे धीरे उसका रंग काला पड़ गया और कपड़े फट गए तब उसने एक मुर्दे का कपड़ा ले लिया। उसके मन में बस एक तमन्ना थी कि ज़मींदार को पावे, तो मार डाले; पर उसे जब भी देखा, एक मंडली में। फिर भी यह प्रतीक्षा करता रहा। उधर मुर्दे खाने का कार्यक्रम चलता रहा। एक दिन वह रात के समय मुर्दा खाकर नदी में पानी पीने गया था, तो वहाँ शक में गिरफ्तार हो गया। तलाशी लेने पर उसकी जेब में मनुष्य की हड्डी निकली। इसी पर उसे मर्दुमखोरी में सजा मिल गई। तब से वह जेल में था।

अपनी कहानी का उपसंहार करते हुए उसने कहा—'ज़मीं-दार को तो मैं मार न सका पर मुझे खुशी है कि कल्लन को मैं मजा दे सका।'

पुलिस के दारोगा ने पूछा—कल्लन कौन ?

'यही सुलतान। इसने अपना नाम बदल कर सुलतान कर लिया है। अफ़सोस है कि मैं ज़मींदार को मार न सका।'

दारोगा ने कहा—'हाँ, मैं भूल गया। इसका एक नाम

कल्लन भी है। मुझे बताना तो नहीं चाहिए, पर वह ज़मींदार मर गया है। कैसे मरा, पता नहीं, पर बताया यही गया कि शिकार को गया हुआ था, वहाँ से नहीं लौटा। लोग यह शक करते हैं कि शेर खा गया। पर खुदा जाने। वह मर गया, तभी तो कल्लन को सजा हो सकी खैर।'

फिर भी रामतेज पर मुकद्मा चला और यथासमय फाँसी की सजा हुई। मर्दुमखोर समाज के न्याय का यही रूप था।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

# गोखरू

फिटकरी, शोरे और नमक के पानी में घुले, कमरे के अँधेरे में जगमगाते, पीले, सुनहरे गोखरू देखते-देखते मलावी की आँखों में आँसू भर आये। निमिष-मात्र के लिए उसके सामने एक चित्र घूम गया—उसका अपना ही चित्र—उन दिनों का, जब जीवन में सब कुछ अच्छा लगता था। भाई से लड़ाई-झगड़ा, पिता का क्रोध से झुँझला कर गालियाँ देना और खीज कर माँ को पीट बैठना—सब कुछ भला मालूम होता था। वसन्त की अपेक्षाकृत लम्बी दुपहरी, जब अपनी स्निग्ध, सुनहरी धूप से सपनों का संसार बसा देती थी और अपने बड़े खुले आँगन में त्रिंजन* के गीत गाते-गाते वह किसी ऐसी ही सपनों की दुनिया में खो जाती थी।

एक लम्बी साँस छोड़ कर मलावी ने अपनी आँखों को मल डाला। यौवन के स्वर्ण-प्रभात की अपनी आकृति देखते-देखते वर्तमान के कंकाल का ध्यान आ जाने से उसकी आँखें भर आयीं। गोखरू उसने फिर डिब्बे में रख दिये; पर डिब्बे को बन्द न कर सकी। क्षणिक आवेश के वश एक गोखरू उठाकर

---

*स्त्रियाँ जब इकट्ठी बैठ कर चरखा कातती हैं तो पंजाब में उसे त्रिंजन कहते हैं।

उसने अपनी कलाई में डालना चाहा; पर वह सख्त था—१६ तोले सोने के भारी गोखरू—उसके हाथों की हड्डियाँ जैसे अब उसके लिए दीवारें बन गयी थीं। चुपचाप उसने फिर उसे डिब्बे में रख दिया और कुछ क्षण मन्त्रमुग्ध-सी वह उन दो सुन्दर गोखरुओं को देखती रही। एक दिन वे उसको सोने ऐसी कलाइयों पर खूब सुन्दर लगे थे। तब उसके अंग भरे हुए थे, हड्डियों के स्थान पर मांसल भुजायें थीं और गालों के गढ़ों में गुलाब हँसा करते थे।

बाहर छोटी-छोटी लड़कियाँ ढोलक पर 'माहिया'[1] गा रही थीं। उसकी आँखों के सामने घूम गया, किस तरह उसके कमरे में भी एक दिन ढोलक रख दी गई थी, और फिर किस तरह चाँदनी रातों में उनके चौड़े विशाल आँगन में, जामुन के वृक्ष की छिदरी छाया के नीचे गाँवभर की नवयुवतियाँ और नववधुएँ इकट्ठी हुई थीं, और किस तरह उन्होंने 'माही', 'राँझा', 'पुन्नू'[2] के गीत गाये थे और किस तरह गाँव की बड़ी-बूढ़ियाँ भी उनके द्वारा अतीत में पहुँच कर उनके स्वर में स्वर मिला देती थीं।

फिर एक दिन तेल, हल्दी और केसर से मिले हुए बेसन के उबटन से मल-मल कर उसे नहलाया गया था और जब उसकी देह कुन्दन-सी दमक उठी थी, तब विवाह का लाल जोड़ा उसे पह-नाया गया था। उसकी कलाइयों में मंगल-सूत्र के तार में

---

१. पंजाब का प्रसिद्ध गीत।

२. पंजाब के अमर प्रेमी।

पिरोये हुए कलीरे बाँधे गये थे और तब माँ ने उसे गहने पहनाये थे। उन्हीं में से ये भारी गोखरू भी थे।

मलावी ने आँखें गोखरुओं से हटा लीं। कमरे की दाँये दीवार के साथ ज़रा और अँधेरे में ट्रंकों पर एक पुराना लकड़ी का लाल डिब्बा उपेक्षित-सा पड़ा था। रंग उसका कई जगह से उतर गया था और उस पर गर्द की गहरी तह चढ़ गयी थी। मलावी की दृष्टि उसी पुराने डिब्बे पर जा पड़ी, फिर उसने अपने शरीर पर निगाह डाली और उस के हृदय से एक दीर्घ-निःश्वास निकल गया। तभी एक असह्य ईर्षा के वस होकर उसने एक गोखरू उठाया, दोनों हाथों में लेकर और तनिक खुला करके उसे पहन लिया। उसकी हड्डी-ऐसी कलाई पर वह कोहनी तक चला गया, तब दूसरा उसने दूसरी कलाई में डाल लिया। वह भी कोहनी तक चला गया, किन्तु उसे दुःख नहीं हुआ। इस अपने चिरपरिचित गहने को सदैव के लिए अलग करते समय एक बार पहन कर वह कृतकृत्य हुई। तभी दरवाज़ा खुला और विवाह के लाल जोड़े में आवृत्त, यौवन, उल्लास तथा प्रसन्नता की तसवीर बनी उसकी लड़की मंसा कमरे में दाख़िल हुई मलावी ने दोनों हाथ दुपट्टे के आँचल से छिपा लिये। उसका रंग पीला पड़ गया, पर कमरे के अँधेरे में उसकी लड़की ने इस परिवर्तन को नहीं देखा और अपनी मीठी सुरीली आवाज़ में इतना ही कहा, "बाबू जी बुला रहे हैं!"

"चल, मैं आयी"—हकलाते हुए मलावी ने कहा।

लड़की चली गयी। मलावी ने उसे जाते हुए देखा—उसके

यौवन-प्रभात का दमकता हुआ चित्र। एक दीर्घ-निःश्वास को निकल पड़ने से बरबस रोक कर उसने गोखरू उतारे और उन्हें उनके उस नये डिब्बे में रख दिया, जिसकी मखमल का रंग गहरा लाल था और जिसकी पीतल की कुंडी भी सुनहरी दिखायी देती थी और अन्धेरे में ट्रंकों पर उपेक्षित से पड़े उस पुराने डिब्बे की ओर जान-बूझ कर देखे बिना मलावी डिब्बे को लिये हुये कमरे से निकल आयी।

दरवाज़े पर शहनाई अपने तीखे, हृदय को भेद देने वाले स्वर में कोई जुदाई का गीत गा रही थी। घर के बाहर भंगियों तथा भंगिनों की भीड़ रास्ता रोके, उत्सुक नज़रों से दूल्हा तथा दुल्हन के बाहर आने की बाट जोह रही थी—पुरुषों के हाथों में बाँसों के साथ बँधी लिपटी चादरें थीं, जो पलक झपकते ही खुल जाने को व्यग्र थीं और स्त्रियों के आँचल फैल जाने को उत्सुक थे। गली के दोनों ओर छतों पर पड़ोसिनों की भीड़ लगी थी, जिनके ओंठ गाना गाने के लिए जैसे फड़क रहे थे।

घर के अन्दर आँगन में तिल धरने को जगह न थी। एक ओर वरपक्ष के लोग खड़े थे, 'इंजड़ी चितने'[1] की रस्म हो चुकी थी और पंडित के मन्त्र अभी-अभी हवा में फैल कर कहीं गुम हो गये थे और उनका स्थान विदाई की सिसकियों ने ले लिया था। पुरोहित ने चावलों का दाना लड़की के हाथ पर रखा। मंसा ने उसे छिड़कते हुए पंडित के कहने के अनुसार ओठों में ही कहा, "आप का भाग्य आप के साथ, मेरा भाग्य मेरे साथ,"

---

१. दूल्हा और दुल्हन के कपड़ों को बाँधने की रस्म।

और उसकी आँखें भर आयीं, तभी सहेलियों ने गाना आरंभ किया—

सठ्ठ सहेली दर खड़ी
मैंनू नहीं मिलन दा चाव
वे सुन बाप मेरा[1]

मंसा सब से गले मिलकर जुदा हो रही थी। यह सुनते ही बाप से चिमट गयी, और लड़कियों ने गाया—

गलियाँ ते होइयाँ बाबल भीड़ियाँ
मैंनूँ आँगन होइया परदेस
वे सुन बाप मेरा[2]

और बाप ने आँखों में अनायास ही छलछला आने वाले आँसुओं को बरबस रोकते हुए उसके कंधे को थपथपा कर कहा—"बस, बस !"

उस समय अपने पिता तथा पुरोहित का इशारा पाकर, दरवाजे पर खड़ी हुई महरी के कुम्भ में कुछ चाँदी के सिक्के डाल कर, दूल्हा बाहर निकले। उनके पीछे-पीछे अपने पिता की गोद से लगी हुई मंसा थी और दोनों के मध्य एक श्वेत साफे का छोर लाल सालू से बँधा-बँधा जा रहा था।

---

१. साठ सहेलियाँ दरवाजे पर खड़ी मेरी बाट जोह रही हैं, पर मेरे मन में किसी से मिलने का चाव नहीं, ऐ मेरे पिता सुन !

२. ऐ पिता, गलियाँ संकरी हो गयी हैं और अपना आँगन अब मेरे लिए परदेश हो गया है।

उस क्षण एक दम बाजे जोर-जोर से बजने लगे, और शहनाई वाले ने झूम-झूम कर, मुँह फुला-फुलाकर शहनाई में फूँक देना आरम्भ किया, तब समधी ने थैली का मुँह खोल कर नये मोहरों की तरह चमकते हुए पैसों की एक-दो मुट्ठियाँ दूल्हा-दुल्हन के ऊपर से वार कर फेंकी। बाँसों से लिपटी हुई चादरें खुलीं, आँचल खुले और पैसों की लूट आरम्भ हो गयी।

तब पीछे चली आने वाली तथा गली के दोनों ओर छतों पर एकत्र स्त्रियों ने आर्द्र कंठों से गाया—

गलियाँ ते होययाँ बाबल भीड़ियाँ
मैंनूँ आँगन होया परदेस
वे सुन बाप मेरा।

मलावी चुपचाप मन्त्रमुग्ध-सी लाल सालू पहने, तनिक-सा घूँघट निकाले दूसरी स्त्रियों के साथ चली जा रही थी। उसकी आँखों से आँसू जारी थे, परन्तु धीमे स्वर से वह भी अन्य स्त्रियों के स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी। उसकी आँखों के सामने एक ऐसा ही दृश्य घूम रहा था, जब वह भी अपने पिता की गोद में चढ़कर घर से विदा हुई थी।

बाजार आ गया। लड़की को ताँगे में बिठा दिया गया। महरी साथ बैठ गयी, तो लड़की की सिसकियाँ और भी ऊँची होती गयीं और वह अपनी माँ के गले से लिपट गयी। मलावी ने अपनी विदा होती हुई लड़की को जोर से अपने बाजुओं में भींच लिया और उस समय उसे एक और स्निग्ध आलिंगन का स्मरण आया, जब बहुत वर्ष पहले अपने ही विवाह पर वह अपनी माँ

से इसी प्रकार लिपट गयी थी। जब सिसकती हुई लड़की को धीरे-धीरे उसने अलग किया, तो उसके बाजुओं पर से होते हुए उसके हाथ निमिषि-मात्र के लिए उसके गोखरुओं पर आ रुके...

पर तब ताँगा चलने लगा था और समधी ताँगे के ऊपर से पैसों की वर्षा कर रहे थे। भंगी लूट रहे थे और बाजे भी ज़ोर-ज़ोर से बज रहे थे।

जब लड़की को विदा करके मलावी अपने घर में आयी, तो उसे सब कुछ सूना-सूना-सा प्रतीत हुआ। सालू बदलने के लिए जब वह अन्दर गयी, तो ट्रंक पर पड़े हुए उपेक्षित-से गोखरूओं के डिब्बे पर उसकी नजर गयी और उसे लगा कि वह अपनी इकलौती लड़की ही को विदा करके नहीं आयी, वरन् अपने सब से प्रिय आभूषण को भी विदा दे आयी है।

दूसरे दिन जब मंसा अपनी ससुराल से वापस आयी और सहेलियों से मिल-मिलाकर जब अपनी माँ के पास बैठी, मलावी ने उसे समझाया कि बेटी, तेरा स्वभाव कुछ बेपरवाही का है। रात को सोते समय गोखरू उतार लिया करना। तेरे हाथों में जरा खुले हैं, कहीं किसी दिन खिसक ही न जायें!

दो वर्ष बीत गये, तीयों* का त्यौहार आ गया। इस बार मलावी ने अपने पति से अनुरोध करके, मंसा को बुलवा भेजा। उसकी ससुराल वाले तो उसे बिल्कुल न भेजना चाहते थे, पर

---

* तीज का त्योहार=जब सावन में लड़कियों के मेले ल[illegible] हैं, झूले पड़ते हैं और आनंद मनाया जाता है।

वह मैके आने के लिए छटपटा रही थी और उसके कई पत्र मलावी को आ भी चुके थे।

मलावी स्वयं भी उसे देखना चाहती थी। इस बीच में यद्यपि वह अपनी गोखरुओं की जोड़ी को बहुत हद तक भूल गयी थी, किन्तु फिर भी जब किसी की कलाइयाँ आभूषणों से भरी हुई देखती, उसे अपनी सूनी कलाइयों का ख्याल आ जाता और अतीत के कई चित्र उसकी आँखों के सामने घूम जाते, जब उसके बाजू गहनों से भरे हुए रहते थे। उसकी कलाइयों में एक साथ बन्द, गोखरू, लच्छे और चूड़ियाँ पड़ी रहती थीं। फिर उसके पति को कारोबार में घाटा पड़ा, वे सब गहने एक-एक कर के सराफ़ की दुकान पर पहुँच गये और हाथ के गहनों में उसके पास केवल गोखरू ही रह गये। फिर वह दिन भी उसकी आँखों के सामने घूम जाता, जब वे गोखरू भी उसने हँस-हँस कर अपनी लड़की को पहना दिये थे। उस वक्त वह घर जा कर ताक में रखे हुए गोखरुओं के पुराने डिब्बे को एक नज़र से देख लेती, दीर्घ निःश्वास भर कर और उसे झाड़-पोंछ कर फिर वहीं रख देती। भाग्य के बिना कौन किसी चीज़ का उपभोग कर सकता है? गहने तो उसे बहुत मिले, पर उन्हें पहनना किसी और ही के भाग्य में था। उन सब गहनों के नाम पर एक पुराना खाली डिब्बा उसके पास रह गया था, जो उसे अपने अभाव की याद ही अधिक दिलाता था, किन्तु फिर भी उस पुराने डिब्बे को वह फेंकती न थी। झाड़-पोंछ कर वहीं ताक में रख दिया करती थी।

और अब जब वह विह्वल-सी हो कर अपनी लड़की की प्रतीक्षा कर रही थी, तो कौन जानता है, अपने उस चिर-परिचित गहने को देखने की लालसा-सी उस के हृदय के किसी अज्ञात कोने में न दबी पड़ी थी।

और जब एक दिन मंसा अपनी ससुराल से आ गयी, तो मलावी ने देखा कि इस दो वर्ष के अर्से ही में उसके गोखरू घिस कर पीतल ऐसे निकल आये हैं। और तब आलिंगन में ले कर कुशल-क्षेम पूछने के बाद, इच्छा न होते हुए भी मलावी ने अपनी लड़की को कोसना आरम्भ कर दिया - "यह गहनों की क्या हालत बनायी है तूने? इस तरह तो पराये का गहना भी नहीं पहना जाता। दो ही वर्ष में तूने इतने कीमती गोखरू घिसा दिये। पाँच रुपये तो मात्र इनकी गढ़ायी में मैंने दिये थे। मैल इनमें इतना जमा हुआ है। बर्तन माँजते, झाड़ू बुहारू देते समय तू उतारती न थी इन्हें?……"

और गोखरूओं से नजर हटा कर उस ने अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखा और उसका हृदय धक्क् से रह गया। वह क्या बक गयी? अपनी लड़की से उसके दुःख-दर्द का हाल पूछने के बदले गोखरूओं का रोना ले बैठी। मलावी ने देखा, उसकी लड़की दुर्बल हो गयी है। उसकी आँखों के गिर्द गढ़े पड़ गये हैं और उसका रंग पहले से काला पड़ गया है—सहसा आवेश के वश हो, उसने फिर अपनी लड़की को अपनी भुजाओं में भींच कर, उसके रूखे शुष्क गालों को चूम लिया।

मंसा की आँखें भर आयी थीं। वह न जाने अपनी माँ से

कौन-कौन से दुःख का बोझ बटाने आयी थी और माँ ने आते ही कोसना आरम्भ कर दिया। अब उस आलिंगन में उसके नीरव आँसू मुखरित हो कर सिसकियाँ बन गये।

तब मलावी ने उसे सान्त्वना देते हुए, अपने इस व्यवहार पर खेद प्रकट किया और तभी मंसा ने बताया कि किस तरह यही गोखरू मात्र उसके पास बच रहे हैं और किस प्रकार उसने उन्हें अपनी कलाइयों से पल-भर के लिए भी अलग नहीं किया। सास ने तो—मंसा ने बताया कि शुरू ही में अपने छोटे लड़के की शादी के बहाने से उसके सब गहने ले लिए थे और फिर लाख माँगने पर भी उसे न दिये थे। ये गोखरू भी एक उत्सव पर उसे पहनने को दिए गये थे, बस फिर उसने इन्हें अपनी कलाइयों से अलग नहीं किया। सास ने बहुतेरा कहा; पर वह किसी तरह भी अपनी कलाइयों को सर्वथा सूनी कर लेने को तैयार न हुई। इस पर उसकी जो दुर्दशा हुई, उसका हाल भी रो-रोकर मंसा ने अपनी माँ को बताया—सास ने उसे ताने दिये, कोसा, यहाँ तक कि गालियाँ दीं; ससुर भी बेहद नाराज़ हुए और उसके पति ने उसे मारा भी—पर उसने फिर गोखरू नहीं दिये।

मलावी ने अपनी लड़की को छाती से लगा लिया, और उसकी आँखों में आँसू भर आये। इन आँसुओं में कितना दुःख था और कितना सुख था, इसे अन्तर्यामी के सिवा कौन जान सकता है?

कहते हैं, यदि किसी दूसरे व्यक्ति की नीयत किसी चीज़

में रह जाय, तो वह चीज़ गुण नहीं करती। इसी लिए शायद गोखरुओं ने मंसा को लाभ नहीं किया, बल्कि उसकी जान ही लेने का कारण बने।

मैके होकर जब मंसा ससुराल पहुँची, तो घरवालों के प्रति उसका व्यवहार और भी रूखा हो गया था और उसने निश्चय कर लिया था कि गोखरू देना तो अलग; वह अपने शेष गहने भी लेकर रहेगी। मलावी ने भी उसे यही कुछ सुझाया था।

"समय-कुसमय पर गहना ही हिन्दू-स्त्री के काम आता है, इसलिए नासमझी में अपना गहना गँवा न देना।" उसने अपना उदाहरण दे कर कहा था और फिर मौसी पूरणदेई की मिसाल दी थी—'अपनी मौसी पूरणदेई को ही देख लो, पति ने दीवाले की दरख़ास्त दे दी; पर उसने अपनी एक तोली[1] तक को भी हाथ नहीं लगाने दिया और अब मुहल्ले की चौधराइन बनी बैठी है।"

इसी परामर्श का यह फल था कि जब एक दिन मंसा की देवरानी को मैके जाना पड़ा और सास ने मंसा से प्रार्थना की कि कुछ दिनों के लिये गोखरू उसे दे दे, तो मंसा ने साफ इनकार कर दिया। सास ने अपने बेटे से कहा, बेटे ने अपनी बहू से, पर बहू कुछ ऐसी अपने हठ पर अड़ी कि टस से मस न हुई। तब उसने बल से गोखरू छीन कर अपने छोटे भाई को दे दिये।

मंसा रोयी, चिल्लायी, उसने गालियाँ खायीं, पिटी और फिर बीमार पड़ गयी।

जब मलावी को मालूम हुआ, उसकी लड़की मृत्यु-शय्या

---

१ नाक का जेवर

पर पड़ी है और उड़ती-उड़ती यह खबर भी उसके कान में पहुँची कि सास-ससुर ने उसके सब गहने छीन लिये हैं, और उसे मारा-पीटा भी है, तो क्रोध से उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलनें लगीं। अपने पति को उसने साथ लिया और 'राहों'—अपनी लड़की की सुसराल को चल दी।

इसके बाद जो हुआ, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसी शाम को सब गहनों समेत वह अपनी मृत-प्राय लड़की को ज़ालम लारी पर लाद घर को वापिस आ रही थी।

मंसा के जीने की कोई आशा हो, यह बात तो नहीं, पर लारी के धक्कों में अपनी लड़की को किसी प्रकार सँभालते हुए वह सर्वशक्तिमान् से यही प्रार्थना कर रही थी कि उसका दम, कम से कम घर जाने तक, रुका रहे।

लारी के फ़र्श पर बिस्तर बिछवा कर, किसी-न-किसी तरह उसने अपनी लड़की को वहां लिटा दिया था। मंसा की आँखें बन्द थीं। कुन्दन-सा शरीर राख हो गया था। लकड़ियों के से बाज़ू। कंकाल से शरीर के दोनों ओर, निर्जीव-से पड़े थे। अन्तिम घड़ियाँ थीं। आत्मा के साथ शरीर का सारा मल भी बाहर निकल जाना चाहता था। तब उस मैले, गन्दे, गीले कपड़े को, किसी न किसी तरह, उसके गिर्द लपेटती हुई, लुढ़क पड़ने से बचाने के हेतु, उसे दोनों हाथों से थामे मलावी उसके सिरहाने बैठी अपनी इस लड़की को निर्निमेष देख रही थी। अपना सब उबाल, सब क्रोध, समस्त क्रन्दन वह समधियाने में

ख़र्च कर आयी थी। इस समय उसकी आँखों में मात्र एक हिंस्र ज्वाला लपलपा रही थी, जैसे वह इस ब्रह्माण्ड को जला डालेगी। रह-रह कर उसकी दृष्टि गोखरुओं पर भी जा पड़ती थी। वह उसे हटा हटा रखती थी, पर फिर वह वहीं जा टिकती। उसके इतनी साध के गोखरू, वह न पहने, उसकी लड़की न पहने, उसे और कोई पहने—यह वह कैसे सहन कर सकती?

इधर-उधर से गुज़रती हुई मोटर-लारियों की मिट्टी उड़ कर लारी के अन्दर आ जाती और वह अपना मुँह दुपट्टे से ढँक लेती और उसी मैले गन्दे कपड़े का एक सिरा अपनी म्रियमाण लड़की के चेहरे पर भी रख देती।

सन्ध्या का सूर्य मकानों के पीछे कहीं पश्चिम में मुँह छिपा चुका था, जब मलावी ने, प्रायः मरी हुई लड़की को लेकर, अपने आँगन में प्रवेश किया। मिनटों में पड़ोसियों ने उसे घेर लिया पर उसने किसी को आँगन में न घुसने दिया, "इसकी हालत ठीक नहीं, निर्दयियों ने बस मार कर ही मेरे साथ कर दिया है," उसने भरी हुई आँखों के साथ कहा और उनसे प्रार्थना की कि वे हवा न रोकें, उसे अपनी लड़की का इलाज करने दें, परमात्मा के घर में······

फिर सबको सुनायी देने वाली आवाज़ में उसने पति से कहा कि दौड़ कर डॉक्टर को बुला लाये, पैसे का मुँह ऐसे समय न देखे और उसके जाने पर, पड़ोसिनों को विनय-पूर्वक बाहर भेज कर उसने आँगन का किवाड़ बन्द कर लिया। और लड़की के सिरहाने जा बैठी।

पर लड़की का दम तो कदाचित अपने इस आँगन तक पहुँचने ही की बाट जोह रहा था। मलावी ने नाड़ी देखी तो वह बन्द हो चुकी थी।

वह चीख मारने लगी थी कि निमिष-मात्र के लिए उसके मन में कोई विचार आया और उसका दिल धक्-धक् करने लगा। चीख़ उस के ओठों तक आ कर रुक गयी। इस विचार को उसने अपने मन से निकालने की कोशिश की, व्यस्त हो कर दिये-बत्ती का भी प्रबन्ध किया, किन्तु उसके अन्तर में निरन्तर संघर्ष छिड़ा रहा और दिल और भी जोर जोर से धक्-धक् करता रहा।

उस ने चाहा रोना शुरू कर दे, पर अब की क्रन्दन उसके ओठों तक भी न आया। एक दो क्षण वह आँगन में इधर उधर घूमी। अपनी दृष्टि को मृत लड़की के शरीर से दूर रखने का भी उसने प्रयास किया, पर उसका द्वन्द्व न मिटा। आखिर वह शव के पास आयी और उसकी अकड़ी हुई कलाइयों से उसने चुपके से गोखरू उतार लिये।

अन्तर में किसी ने कहा, "लड़की का धन है।"

किन्तु फिर अन्तर ही से कोई बोला, "मृत लड़की का कैसा धन ? कोई बचा भी तो नहीं!"

और वह गोखरू लिये अन्दर कमरे में चली गयी। ताक में वही पुराना उतेसित-सा डिब्बा पड़ा था। मलावी ने दुपट्टे से उसे झाड़ कर गोखरुओं को उसमें रखा और फिर उसे ट्रंक में बन्द कर दिया। तब ट्रंक से एक श्वेत खेस और चादर निकाल

लायी। शव के गन्दे कपड़े उतार कर उसने एक कोने में रख दिये और उस के नीचे खेस बिछा कर चादर को उसके शरीर पर लपेट दिया। सिरहाने दानों के ढेर पर रखे हुए आटे के दिये को दिया-सलाई दिखायी और फिर आँगन का दरवाज़ा खोल कर उसने एक चीख़ मारी।

इस के बाद ग्यारह दिन किस प्रकार गुज़ारे, मलावी कितनी रोयी-पीटी, उसने कितने बाल नोचे, इसका पता उसकी सूजी आँखें, लाल छाती और रूखे खड़े-खड़े बाल भली भाँति देते थे। ग्यारह दिन तक वह अपनी लड़की के ससुराल वालों को गालियाँ देती रही, कि गहनों के लिए उन्होंने उसकी लड़की की जान ले ली और ग्यारह दिन तक ही वे गन्दे, मैले, बदबूदार कपड़े उसने अपने घर में रख छोड़े, और गली-मुहल्ले को दिखा-दिखा कर उसने अपनी लड़की के ससुराल वालों की नीचता सिद्ध कर दी और सारी बिरादरी के सामने वे चन्द गहने, जो गोखरुओं के अतिरिक्त उसकी लड़की के शरीर से उतरे थे, उसने क्रिया-कर्म के दिन दान करा दिये।

एक पड़ोसिन ने पूछा—"गोखरू नहीं दिये?"

उत्तर देते समय मलावी का दिल धड़क उठा; पर उसने उन कपड़ों की ओर, जो आँगन के एक कोने में नाली पर पड़े थे, संकेत करते हुए कहा कि जिन्होंने उसकी फूल-सी लड़की को ऐसे गले-सड़े कपड़ों में आवृत्त रखा, उनसे ऐसी आशा कहाँ? ये सब भी न जाने कितना लड़-झगड़ कर वह लायी है। उस निर्दय धरती में पैदा होने वालों ने तो उसकी बच्ची को गहनों

के लिए तरसा-तरसा कर मार दिया और फिर जैसे अपने आप से उसने कहा था, "अब दिये भी तो क्या ?"

और जब 'क्रिया-कर्म' के बाद बारहवें दिन वह रात को छत पर लेटी, तो उसे नींद न आयी। वह सर्वथा अशिक्षित गँवार स्त्री थी। सूक्ष्म-भावों का विश्लेषण करना वह न जानती थी, पर उसका वह समस्त कृत्य उसके मन पर बोझ बना बैठा था। अपनी मृत लड़की के शव से उसने गोखरू उतार लिये। उस ने क्यों ऐसा किया ? उसके कोई दूसरी लड़की नहीं। उसके क्या, उसके रिश्तेदारों तक में कोई लड़की नहीं कि उसे उनमें से किसी के विवाह आदि में कोई गहना देना हो। क्या वह अंधों की तरह गोखरुओं के पीछे नहीं भागती फिरी ? क्या वही अपनी लड़की की घातक नहीं ? और वह सिहर उठी। उसने सिर को झटका देकर इस विचार को मस्तिष्क से निकालने का प्रयास किया।

उनकी छत के चारों ओर बड़े-बड़े मकान थे। परे अँधेरे में उसका पति गहरी नींद सोया हुआ था। मलावी ने लम्बी साँस ली—उसके पति के मन पर कोई बोझ नहीं। पर उसके अपने मन पर......उसने करवट बदल ली।

आकाश पर यद्यपि चाँद चमक रहा था, किन्तु उसकी एक किरण तक भी उनकी छत पर न दिखायी देती थी और रात जैसे ऊपर के खुले मकानों की दीवारों से टकरा कर सायँ-सायँ कर रही थी।

मलावी के सामने उसका कृत्य फिर भयावह रूप धारण

मलावी ने फिर करवट ली। दूर, कदाचित कहीं किसी लड़की का विवाह होने जा रहा था। दूल्हा शायद 'लगनों' के लिए आ रहा था। बाजे बज रहे थे। और शायद आगे-आगे आतिशबाज़ी छूट रही थी—एक हवाई आकाश की बुलंदियों को तय करती हुई ऐन उसकी छत के ऊपर आ कर फटी। ज़ोर का धमाका हुआ। मलावी डर गयी और फिर निर्निमेष उस तेज़ी से नीचे की ओर आने वाली चिनगारी को ताकती रही। उसकी आँखों के सामने उसकी लड़की के विवाह का सारा दृश्य घूम गया और फिर उसकी अर्थी का दृश्य—क्या इन दोनों को इतना समीप लाने में उसका हाथ न था ?

वह अपनी चारपाई से उठी और वहीं छत पर इधर-उधर घूमने लगी। ऊपर से कोई पंछी फड़-फड़ करता हुआ उड़ गया। उसके मन में हलचल मची हुई थी और उन बद-क़िस्मत गोखरुओं का भार जैसे उसके मन पर प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था।

के लिए तरसा-तरसा कन्धों को लिये हुए जब भगवती ब्राह्मणी ने उसने कहा था, "खोले, तो मंसा की माँ को उस समय अपने

और ऊपर वह विस्मित-सी खड़ी रह गयी।

छत पर

अन्दर जाकर दिये के मद्धम प्रकाश में भगवती ने देखा, मंसा की माँ का चेहरा श्वेत हो रहा है, उसके बाल बिखरे हुए हैं और ओंठ सूखे हुए हैं।

"तुम्हारी बहू घर ही पर है?"

इस प्रश्न पर और भी चकित भगवती मलावी के मुँह की ओर देखने लगी, फिर उसने धीमे, शंकित स्वर में कहा, "बेचारी अभी सोयी है। धनीराम सेठ की लड़की का लगन था। फेरे शायद अब हो रहे हैं, पर मैं तो ले आयी उसे।"

भगवती के लड़के का विवाह कुछ ही दिन पहले हुआ था। अपने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध वह अपने इस बड़े यजमान की लड़की के विवाह पर बहू को ले गयी थी। यदि अभी से यजमान से परिचय पैदा न किया, तो काम कैसे चलेगा? फिर भी 'लगनों' की समाप्ति से पहिले ही वह उसे ले आयी थी। अभी-अभी बहू अपने कमरे में गयी थी, इसलिए उसे बुलाने में भगवती को संकोच हो रहा था। पर मलावी की आकृति में, उसके स्वर में कुछ ऐसी बात थी, कि वह कुछ न कह कर चुप-चाप ऊपर चली गयी।

कुछ क्षण बाद भगवती के पीछे-पीछे, तनिक-सा घूँघट निकाले हुए सकुचाती और लजाती बहू सीढ़ियाँ उतरी।

मलावी अभी तक वैसे ही खड़ी छत की ओर देख रही थी। अचानक दीवार के साथ लगी हुई पीढ़ी को बिछाकर उसने बहू से कहा, "बैठो !"

तब भगवती को अपने व्यवहार के अनौचित्य का ध्यान आया। पीढ़ी मंसा की माँ की ओर खिसका कर उसने कहा, नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं मूढ़ा लायी।' और यह कह कर वह जल्दी से अन्दर कोठरी से पिसी हुई महीन ईख के घिसे, मैले मूढ़े उठा लायी।

तब बहू का हाथ थाम कर मंसा की माँ ने उसे मूढ़े पर बिठाया और अपने दुपट्टे से गोखरू खोल कर लाल चूड़े के आगे उसकी कलाइयों में पहना दिये।

भगवती की आँखें चमक उठीं और बहू आश्चर्यान्वित-सी, उन चमकते हुए गोखरुओं को देखती रह गयी।

तब भरे हुए गले से मलावी ने कहा, "भाभी ये मेरी मंसा के गोखरू हैं। मैं अपनी खुशी से इन्हें बहू को देती हूँ। तुम मेरी लड़की के लिए प्रार्थना करना कि ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।" और फिर कुछ रुक कर उसने कहा, "और मेरी एक विनय और है, बहू जब भी हमारे घर आये, इन गोखरुओं को अवश्य पहन कर आये।"

इसके बाद भगवती ने जिन आशीषों का सिलसिला आरम्भ किया, उन्हें मंसा की माँ ने नहीं सुना। दीर्घ-निःश्वास को निकल

पढ़ने से बरबस रोक कर और बिना गोखरुओं की ओर देख, वह दरवाज़ा खोल कर बाहर निकल आयी।

रात अब भी सायं-सायं कर रही थी और दूर कहीं आकाश की ऊँचाइयों में देर का उड़ा हुआ फानूस धीरे-धीरे नीचे की ओर आ रहा था।

## नाग फांस

सुशील की माँ अक्सर कहा करती थी और अकसर क्या अब तो कहने के लिये उसके पास यही कहानी शेष रह गई थी। वह लम्बी साँस खींच कर गर्व और वेदना भरे स्वर में कहती 'भगवान की कृपा से उसने चौदह पुत्रों को जन्म दिया था।'

सुनने वाली तब अचरज से उसे देखतीं। उनका कौतूहल आँखों में साकार हो उठता और उनमें से कोई वाचाल पूछ बैठती—'चौदह पुत्र !! पर माँजी अब तो केवल दो हैं।'

'हाँ, बेटी ! देखने के लिये ये ही दो हैं। वैसे मेरे चार बेटे दिसावर रहते हैं।'

'अच्छा, कमाने के लिये गये हैं।'

'हाँ, कमाते ही होंगे।'

'क्यों, कुछ भेजते नहीं ?'

'ना बेटी ! उन्होंने तो जा कर एक बार इधर देखा भी नहीं।'

'हाय रे कैसे बेटे हैं'—वह वाचाल नारी काँप उठती—'पर मां जी तुम्हें—उनका पता तो होगा ?

सुशील की मां उसी सहज वेदना के स्वर में बोलती—'पता बताया ही नहीं तो कैसे जान सकती हूँ। वे चारों तो ऐसे गये कि जैसे थे ही नहीं।'

'शेष।'

'राम को प्यारे हुये।'

'ओह...!'

क्या बताऊँ, बेटी। ये दो बचे हैं। कुशल का स्वभाव भी ऐसा ही था—कई बार भागने को हुआ। पर उस पर मैंने बड़ी मन्नतें मानी हैं;—जात बोली है; चढ़ावे चढ़ाये हैं तब कहीं जा कर देवी की कृपा से रुका है।'

इस पर प्रायः सभी नारियाँ उसे एक ही सलाह देती थीं—'कुशल का विवाह कर दो, मांजी। विवाह का बन्धन आदमी को बड़ा प्यारा लगता है। आज कल देर से विवाह करने की जो रीति चल पड़ी है उस कारण भी सत्ता हाथ से निकल जाती है।'

सुशील की मां ने भी यही बात सोच रखी थी। उसके चारों बेटे सगाई कराने से पहले ही भाग गये थे। इसलिये कुशल की सगाई के लिए धूमधाम शुरू हुई। और एक दिन गोरी सी लड़की देख कर उसे तिलक चढ़ा दिया गया। फिर लगन आया और विवाह की तिथि निश्चित हो गई। कुशल ने एक बार भी आपत्ति नहीं की बल्कि सब काम प्रसन्नचित्त से करता रहा। सुशील की माँ को त्रिलोकी का राज मिला। उसने सुशील के पिता से कहा—'यह दिन बड़े पुण्य से देखने को मिला है। मैं मन की निकाल कर रहूँगी।'

ला० चन्द्रसेन निम्न-मध्य-वर्ग के व्यक्ति थे। यही वर्ग है जो अक्सर महापुरुषों को जन्म देता है। यही वर्ग है जो बड़ी-बड़ी आशाओं और आकांक्षाओं को लेकर जन्म लेता है परन्तु

साधन के अभाव में घुटी हुई तमन्नाओं का मजार बन कर रह जाता है। यही है संघर्षों की क्रीड़ाभूमि और यहीं पर आदमी समझ से सम्पर्क स्थापित करता है। ला० चन्द्रसेन भी समझदार थे और इसी समझदारी को आगे बढ़ाने के लिए उनके पुत्रों ने घर की संकुचित दीवारें पार करके खुले विश्व में आश्रय लिया था। पुत्रों के जाने का दर्द उन्हें भी था पर वे पुरुष थे, पिता थे। पत्नी की बात सुन कर वे हँसे—'मैं कब मना करता हूँ।'

सच तो यह है उनके भीतर भी आकांक्षायें आग्रह कर रही थीं। पहला विवाह है, ऐसा हो जिसे सब याद रखें। इसलिये उन्होंने बढ़िया अंग्रेजी बाजे का आर्डर दिया था। भोज की व्यवस्था देश की हालत को देखते हुए सीमित थी परन्तु जितनी थी ईर्ष्या का विषय थी। तश्तरी में बड़ी-बड़ी आठ मिठाइयों का प्रबन्ध था। नमकीन तश्तरी का तोल पाव भर के लगभग बैठता था। डालडा के युग में उन्होंने गाँव-गाँव घूम कर घी इकट्ठा किया था। वे कहा करते थे—'या तो करो नहीं। करो तो ऐसा करो कि याद ही आती रहे।' और उन्होंने ऐसा ही करने का निश्चय किया। बरात जाने में अब एक सप्ताह भी नहीं था। भोज की तैयारियाँ हो रही थीं। केवल साग और कचौरियां उतरनी थीं। मुँह अन्धेरे से ही हलवाइयों ने शोर मचाया। अन्दर से और भी वेग से हल्दी चढ़ाने का शोर उठा। लाला जी ने आकर कहा—'अरे भई! क्या देर है? मसाला निकालो और सबको साग काटने पर बैठा दो।'

'शेष।'

'राम को प्यारे हुये।'

'ओह...!'

क्या बताऊँ, बेटी। ये दो बचे हैं। कुशल का स्वभाव भी ऐसा ही था—कई बार भागने को हुआ। पर उस पर मैंने बड़ी मन्नतें मानी हैं;—जात बोली है; चढ़ावे चढ़ाये हैं तब कहीं जा कर देवी की कृपा से रुका है।'

इस पर प्रायः सभी नारियाँ उसे एक ही सलाह देती थीं—'कुशल का विवाह कर दो, मांजी। विवाह का बन्धन आदमी को बड़ा प्यारा लगता है। आज कल देर से विवाह करने की जो रीति चल पड़ी है उस कारण भी सत्ता हाथ से निकल जाती है।'

सुशील की मां ने भी यही बात सोच रखी थी। उसके चारों बेटे सगाई कराने से पहले ही भाग गये थे। इसलिये कुशल की सगाई के लिए धूमधाम शुरू हुई। और एक दिन गोरी सी लड़की देख कर उसे तिलक चढ़ा दिया गया। फिर लगन आया और विवाह की तिथि निश्चित हो गई। कुशल ने एक बार भी आपत्ति नहीं की बल्कि सब काम प्रसन्नचित्त से करता रहा। सुशील की माँ को त्रिलोकी का राज मिला। उसने सुशील के पिता से कहा—'यह दिन बड़े पुण्य से देखने को मिला है। मैं मन की निकाल कर रहूँगी।'

ला० चन्द्रसेन निम्न-मध्य-वर्ग के व्यक्ति थे। यही वर्ग है जो अक्सर महापुरुषों को जन्म देता है। यही वर्ग है जो बड़ी-बड़ी आशाओं और आकांक्षाओं को लेकर जन्म लेता है परन्तु

साधन के अभाव में घुटी हुई तमन्नाओं का मज़ार बन कर रह जाता है। यही है संघर्षों की क्रीड़ाभूमि और यहीं पर आदमी समझ से सम्पर्क स्थापित करता है। ला० चन्द्रसेन भी समझदार थे और इसी समझदारी को आगे बढ़ाने के लिए उनके पुत्रों ने घर की संकुचित दीवारें पार करके खुले विश्व में आश्रय लिया था। पुत्रों के जाने का दर्द उन्हें भी था पर वे पुरुष थे, पिता थे। पत्नी की बात सुन कर वे हँसे—'मैं कब मना करता हूँ।'

सच तो यह है उनके भीतर भी आकांक्षायें आग्रह कर रही थीं। पहला विवाह है, ऐसा हो जिसे सब याद रखें। इसलिये उन्होंने बढ़िया अंग्रेजी बाजे का आर्डर दिया था। भोज की व्यवस्था देश की हालत को देखते हुए सीमित थी परन्तु जितनी थी ईर्ष्या का विषय थी। तश्तरी में बड़ी-बड़ी आठ मिठाइयों का प्रबन्ध था। नमकीन तश्तरी का तोल पाव भर के लगभग बैठता था। डाल्डा के युग में उन्होंने गाँव-गाँव घूम कर घी इकट्ठा किया था। वे कहा करते थे—'या तो करो नहीं। करो तो ऐसा करो कि याद ही आती रहे।' और उन्होंने ऐसा ही करने का निश्चय किया। बरात जाने में अब एक सप्ताह भी नहीं था। भोज की तैयारियाँ हो रही थीं। केवल साग और कचौरियां उतरनी थीं। मुँह अन्धेरे से ही हलवाइयों ने शोर मचाया। अन्दर से और भी वेग से हल्दी चढ़ाने का शोर उठा। लाला जी ने आकर कहा—'अरे भई! क्या देर है? मसाला निकालो और सबको साग काटने पर बैठा दो।'

इतने ही वेग से सुशील की मां चीखी—'अजी कुशल को भेजो हल्दी चढ़ानी है।'

'ओ हो भई कितनी देर है।'

'देर कुशल की है। उसे भेजो, बस।'

'कुशल कहाँ है?' 'कुशल यहाँ था' 'कुशल वहाँ होगा' क्षण भर में एक और शोर उठा। ऐसा कि हल्दी और हलवाई की आवाज़ उसमें डूब गई। कुशल भी उसी शोर में डूब गया। पता लगा वह रात ही कहीं चला गया है। उसके बिस्तरे पर एक पत्र था। बहुत बड़ा नहीं था पर उसके अर्थ बड़े थे। माँ को यह समझते देर नहीं लगी कि कुशल भी भाइयों की राह का राही बना है। वह रोई नहीं गुम हो गई। लोगों ने कहा—ढूँढ़ो!'

ला० चन्द्रसेन ने धीरे से कहा—'बेकार है।'

'क्यों?'

'जो रहना नहीं चाहता उसे रोकने की चेष्टा करना उसे और खोना है।' सुन कर सब स्तम्भित रह गये। वे जैसे अपने से बोलते हों—'मैंने ग़लती की जो उसे बाँधना चाहा। उससे कहता बेटा! तू भी जा, दुनिया को देख पहिचान। मेरा जो कर्त्तव्य था वह मैंने यथा शक्ति पूरा कर दिया। पाल-पोस तुझे सोचने-समझने योग्य बना दिया।'

सुशील की मां ने सुना तो उससे न रहा गया; तड़प कर बोली—'आखिर वे तुम्हारे ही बेटे तो हैं।'

'मेरे।'—वे हँसे—'मेरा तो मैं भी नहीं हूँ। वे क्या होते।'

बहस आगे बढ़ी और आँसुओं की अवाध गति में उसका अन्त हुआ। अन्त हुआ यह कहना ग़लत है। अन्तिम छोर की तरह उनका सब से छोटा बेटा सुशील अभी शेष था। पन्द्रह वर्ष का वह सुन्दर बालक सेब की तरह लाल और फूल की तरह खिला हुआ था। उसकी हँसी में सुगन्ध थी पर बड़े भाई के तिलक के दिन उसे जो ज्वर चढ़ा था वह उतरने से बराबर इन्कार कर रहा था। विवाह में लगे हुये परिवार में उसे कोई बहुत महत्व नहीं दिया गया पर अब जब हल्दी और हलवाई की बात फैल कर मिट गई तो मां ने सुशील की पट्टी का सहारा लिया। देखा—संध्या होते-होते उसका सेब-सा लाल मुख अंगार-सा लाल हो जाता है और आँखें दहकने लगती हैं।

तब पछाड़ खा कर मां ने डाक्टर का दामन पकड़—'डाक्टर, मेरा सब कुछ ले लो पर इसे बचा दो।'

सान्त्वना के स्वर में डाक्टर बोला—घबराइये नहीं ! बुखार है अपने वक्त पर उतरेगा।'

'उतर जायेगा'—पागल-सी उसने पूछा।

'हाँ, हाँ।'

'कब ?'

'यही सात-आठ दिन में।'

लेकिन आठ क्या अठ्ठाईस दिन होने आये बुखार ने जाने का नाम भी नहीं लिया। एक बार लगा था जैसे बुखार टूट चला है पर तीसरे दिन ही वह दूने वेग से चढ़ आया। माँ रोते-रोते अधमरी सी हो गई। डाक्टर मनुष्य था उसने माँ की

करुणा को समझा। वह गम्भीरता से बोला—माँ! यह बुखार इकहत्तर दिन तक चलता रहता है। इसकी दवा कुछ नहीं होती यह तो केवल रोगी की देख-भाल से ठीक होता है।'

माँ ने कहा—'आप जैसे कहते हैं वैसे ही मैं करती हूँ।'

'ठीक है। अभी और करे जाइये। आजकल में बुखार टूटने ही वाला है। प्रसन्न रहिये और रोगी को प्रसन्न रखिये, मैं जानता हूँ यह कठिन है पर बेटे के लिये तुम सब कुछ कर सकती हो। चार-पाँच दिन की बात है।'

डाक्टर ने ठीक कहा था। पांचवें दिन बुखार टूट गया। सुशील जितना शरीर से स्वस्थ था, मन भी उसका उतना ही दृढ़ था। देखते-देखते रंग लौटने लगा। माँ का मन खिल उठा। पिता की चिन्ता भी जैसे कम हुई। सुशील ने ज्वर में पिता से प्रतिज्ञा करवा ली थी कि अच्छा हो जाने पर उसे कालेज भेजेंगे। अच्छा होते होते उसने यही रट लगानी शुरू कर दी। एक दिन बोला—'पिता जी कालेज खुलने का एक सप्ताह रह गया है, मेरी फीस भेज दो न।'

पिता ने जवाब दिया—'कल शहर जा कर मैं सब ठीक कर आऊँगा।'

माँ ने धीरे से इतना कहा—'बेटा! पहले ठीक तो हो जा फिर जाने की बात सोचना।'

सुशील मुस्कराया—'माँ! तुम सदा शंका करती रहती हो। मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। अगले सप्ताह कालेज जाऊँगा। डाक्टर से पूछ देखो...।'

डाक्टर ने हँस कर कहा—'हाँ, हाँ, तुम बिलकुल ठीक हो। एक सप्ताह में शहर जा सकोगे परन्तु तुम्हें भोजन का विशेष ध्यान रखना होगा।'

'जी मैं वही खाता हूँ जो आप बताते हैं।'

'तुम सचमुच एक आदर्श रोगी हो। तभी तो बार-बार रोग को पछाड़ कर अच्छे हो जाते हो। हाँ, कल मैं तुम्हारे लिये टॉनिक लाऊँगा।'

यह कह डाक्टर उठे। फिर कहा—'पर सुशील! भगवान के लिये अब बुखार को न्योता न दे बैठना। समझे, शरीर के शत्रु से ऐसी मित्रता ठीक नहीं है।'

बात हँसाने के लिये कही गई थी, सब अट्टहास कर उठे पर अगले दिन अचानक क्या हुआ सवेरा होते-होते सुशील जाड़े से काँपने लगा। फिर ज्वर का आक्रमण हुआ; तापमान देखा तो १०५ पर था। चिन्तातुर डाक्टर ने बहुत देर तक गम्भीरता से जाँच कर के कहा—'इस बार टाइफाइड के साथ मलेरिया भी है।'

भयातुर पिता ने चकित हो कर पूछा—डाक्टर आखिर यह क्या है?'

डाक्टर ने पिता के कन्धे को थपथपाते हुये कहा—'चिन्ता मत करो। सब कुछ ठीक होगा। दुख इतना ही है कि सुशील महाशय अगले सप्ताह कालेज न जा सकेंगे।'

डाक्टर फिर हँसा यद्यपि उसका उत्तर भय से...

सुशील प्राय: संज्ञाहीन-सा था पर कालेज का नाम सुन कर उसने आँखें खोल दीं। बोला—'मैं कालेज अवश्य जाऊँगा। पाँच-छः, दिन की देर हो जायेगी तो क्या है? पिता जी! आप मेरी फीस अवश्य भेज दीजिये।'

पिता ने कहा—'भेज दूँगा पर तुम्हें अपना ध्यान रखना चाहिये।' सुशील ने नहीं सुना वह बोला—'पिता जी! मैं डाक्टर बनूँगा।'

'अवश्य बनना।'

आगे उससे बोला नहीं गया। वह दिन पर दिन दुर्बल होने लगा और उसके प्राण थक चले पर उसकी इच्छा-शक्ति बड़ी-प्रबल थी। सूईयों से उसका शरीर बिंध गया था। दवाइयों ने उसको चिड़चिड़ा बना दिया था तो भी इक्कीस दिन बाद जब उसका ज्वर उतरा तो उसने यही कहा—'दीवाली बाद मैं अवश्य कालेज जाऊँगा।'

'बेशक तुम जा सकोगे'—डाक्टर ने कहा।

पिता गर्व से बोले—'तुम्हारा परीक्षाफल इतना सुन्दर है कि प्रिन्सिपल ने मुझे विश्वास दिलाया है तुम शीघ्र ही सब कमी पूरी कर लोगे।'

डाक्टर ने विजयी खिलाड़ी के स्वर में कहा—'विश्वास में अद्भुत शक्ति होती है। मैंने बड़े-बड़े रोगियों को विश्वास के बल पर अच्छे होता देखा है।'

यही विश्वास सुशील की ढाल बन गया। वह तीव्र गति से स्वस्थ होने लगा। उसे हर समय यही रट लगी रहती

थी—'मैं कालेज जाऊँगा। मैं डाक्टर बनूँगा।

माँ कहती—'डाक्टर बन कर तू कहाँ जायेगा ?'

'यहीं रहूँगा, माँ।'

'इसी क़स्बे में।'

'हां, माँ। पास में बहुत गाँव हैं। उनके स्वास्थ्य की देख-भाल करना हमारा कर्त्तव्य है। उनका स्वास्थ्य ठीक न रहेगा तो देश की उन्नति कैसे होगी।'

माँ उसे चुप करने की इच्छा से बोली—'देश की चिन्ता करने से पहले अपने को तो देख।'

सुशील गर्व से बोला—'मैं ही देश हूँ, माँ।'

माँ अचकचाती-चौंकती—'आखिर तुम ये बातें कहाँ से सीखते हो ?'



'तुम से।'

'मुझ से।'

'हाँ ! तुम माँ हो ! तुमने ही तो हमारा निर्माण किया है।'

तब माँ हर्ष से फूलती, चिन्ता से दुबलाती। देर तक एकान्त में बैठ कर सोचती—ये मेरे बेटे हैं इनमें मेरा रक्त है पर मुझे तो ये बातें आती नहीं। फिर मुझसे ये कैसे सीखते हैं ? सीखते हैं तो मुझे छोड़ कर क्यों चले जाते हैं ? क्या सुशील भी चला जावेगा...क्या सुशील भी...सुशील जो मेरी आखिरी सन्तान है, मेरी आखिरी आशा है...।

वह काँपी ...सिहर-सिहर उठी...तभी किसी ने अन्दर से पुकारा सुशील में एक अन्तर है वह सोचता नहीं बोलता है...

'हाँ, वह सोचता नहीं, बोलता है पर बोलता तो वैसी ही बातें है देश...आदमी...कर्त्तव्य और न जाने क्या क्या...।'

उस रात वह देर तक यही दिवा-स्वप्न देखती रही। सवेरे उठी तो देखा—सुशील चादर ताने लेटा है।

पुकारा—'सुशील।'

सुशील नहीं बोला। सशङ्क पास आ कर उसने चादर के भीतर हाथ डाला जैसे अंगार दहक रहा था। वह काँप कर पीछे हट गई और भराये स्वर में कहा—'सुशील...सुशील !!'

क्षीण स्वर में सुशील चौंक कर बोला—'क्या है ?'

'कैसा जी है, बेटा ?'

'शरीर जल रहा है। रात शीत लगा था। छाती में दर्द है।'

'छाती में दर्द'—माँ पागल सी उसके पिता के पास दौड़ी—देखिये तो सुशील को खूब बुखार चढ़ा है। छाती में दर्द है।'

पिता के ऊपर जैसे वज्र गिरा! एक दम बोले—'क्या ?'

'बुखार!'

'बुखार! बुखार कहाँ है ?'

माँ ने किंचित तेज़ हो कर कहा—'जल्दी जाकर डाक्टर को बुलाओ। सुशील की छाती में दर्द है और बुखार भी तेज़ है।'

'क्या सुशील को बुखार चढ़ा है ?'

'हाँ, छाती में दर्द है।'

इस बार वह सन्तोषी जीव बुरी तरह घबरा उठा। शीघ्रता से कपड़े पहने और सुशील को देख कर फिर आकाश को

देखा फिर डाक्टर की ओर लपके। डाक्टर कई क्षण तक किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रहा फिर बिना कुछ बोले पास आया। देखा, देख कर बोला—'नमूनिया है।'

'नमूनिया !!'–पिता ने कहा।

'नमूनिया'—माँ रो पड़ी।

कई क्षण कोई किसी से नहीं बोला। आखिर डाक्टर ने शिकायत के स्वर में कहा—'मैं कहता हूँ क्या आप इसका बिलकुल ध्यान नहीं रखते। इसे सर्दी लगी है।'

रुँधे स्वर में माँ ने उत्तर दिया—'मैं क्या बताऊँ डाक्टर! रात को बार-बार उठ कर मैं उसे कपड़ा ओढ़ाती हूँ।'

'दवा कौन देता है ?'

'मैं देती हूँ।'

'ठीक समय पर?'

'आप सुशील से पूछ लीजिये।'

'अचरज है',—डाक्टर ने दोनों हाथ हवा में हिलाते हुए कहा—'कुछ समझ में नहीं आता क्या बात है? जैसे ही रोगी में शक्ति आती है रोग उसे आ दबाता है। अच्छा मैं पेन्सीलीन की सुइयाँ लगाता हूँ।'

और फिर दो दिन तक डाक्टर हर चार घंटे के बाद सुइयाँ लगाता रहा। पूरा एक सप्ताह बीत गया। माँ ने तो जैसे अपने को मिटा डाला। सब अश-अश कर उठे। पड़ोसियों ने कहा–'माँ न करेगी तो कौन करेगा और फिर यह माँ जिसके बेटे एक के बाद एक उसे छोड़ कर चले गये हों।'

'हाँ जी। वह तो उसके लिये जान भी दे दे तो थोड़ी है।'

'और दे ही रही है।'

'बेचारी ने न जाने पिछले जन्म में क्या पाप किये थे?'

'पाप क्या जी आजकल की तो औलाद ही निराली है। यों कहते हैं बेटा माँ बाप का नहीं होता; देश का होता है।'

'हाँ जी! यही बात है भला कोई पूछे उनसे तुम्हें पाल-पोस कर किसने बड़ा किया है, देश ने या माँ ने! तुम्हारे गू-मूत किसने उठाये देश ने या माँ ने?'

वे सब जो या तो वृद्धा थीं या वृद्धा होने वाली थीं इसी प्रकार बातें करती थीं पर उनमें कुछ युवतियाँ भी थीं। एक शहर में रह कर पढ़ी थीं, बोली—और तो मैं कुछ नहीं जानती पर आदमी होता देश के लिये ही है।'

जैसे यह युद्ध की चुनौती थी। फिर तो घंटों क्या दिनों तक यही चर्चा घर-घर और गली का विषय बनी रही। यहाँ तक कि सुशील फिर अच्छा होने लगा पर देश और आदमी के रिश्ते का कोई निर्णय नहीं हुआ। डाक्टर भी इस चर्चा में रस लेते थे। एक दिन सुशील के पिता को बुला कर उन्होंने कहा—'इस बार सुशील की देख-भाल विशेष रूप से करनी होगी यदि अब रोग ने आक्रमण कर दिया तो...।'

डाक्टर ठिठका। ला० चंद्रसेन ने कहा—'जानता हूँ डाक्टर! जानता हूँ।'

'यही समय है जब रोग आक्रमण करता है।'

'जो अब हमने बारी-बारी से रात को जागने का प्रोग्राम बनाया है, उसकी एक ममेरी बहन को भी बुला भेजा है।'

क्षण भर डाक्टर ने शून्य में जाकर फिर कहा—'दो-चार दिन मैं भी रहना चाहूँगा।'

'आप !'

'हाँ मैं।'

करुण स्वर में ला० चन्द्रसेन ने कहा—'डॉक्टर ! आपने क्या नहीं किया। आपकी कृपा से ही सुशील बार-बार मौत के मुँह में जा कर भी लौट आता है। आप अब इतना कष्ट न कीजिये...।'

डॉक्टर गम्भीरता से बोले—'मैं रोगी का अध्ययन करना चाहता हूँ।'

'जी।'

'और वह भी कुछ दूर से।'

'आपका मतलब ?'

'मतलब यह है कि मैं आपके कमरे में रह कर सुशील की देख-भाल करूँगा और हाँ ! यह बात किसी से कहिये नहीं। माँ से भी नहीं।'

लाला जी के मन में कुछ अजीब-सा तो लगा पर गर्व भी कम नहीं हुआ। घर आकर यह बात वे सुशील की माँ से कहते-कहते तनिक ही बचे। आज डॉक्टर कहते थे... इतना कह कर जैसे उन्हें होश आया। चुप हो गये।

सुशील की माँ बोली—'डॉक्टर क्या कहते

'हाँ जी। वह तो उसके लिये जान भी दे दे तो थोड़ी है।'

'और दे ही रही है।'

'बेचारी ने न जाने पिछले जन्म में क्या पाप किये थे ?'

'पाप क्या जी आजकल की तो औलाद ही निराली है। यों कहते हैं बेटा माँ बाप का नहीं होता; देश का होता है।'

'हाँ जी! यही बात है भला कोई पूछे उनसे तुम्हें पाल-पोस कर किसने बड़ा किया है, देश ने या माँ ने! तुम्हारे गू-मूत किसने उठाये देश ने या माँ ने ?'.

वे सब जो या तो वृद्धा थीं या वृद्धा होने वाली थीं इसी प्रकार बातें करती थीं पर उनमें कुछ युवतियाँ भी थीं। एक शहर में रह कर पढ़ी थीं, बोली—और तो मैं कुछ नहीं जानती पर आदमी होता देश के लिये ही है।'

जैसे यह युद्ध की चुनौती थी। फिर तो घंटों क्या दिनों तक यही चर्चा घर-घर और गली का विषय बनी रही। यहाँ तक कि सुशील फिर अच्छा होने लगा पर देश और आदमी के रिश्ते का कोई निर्णय नहीं हुआ। डाक्टर भी इस चर्चा में रस लेते थे। एक दिन सुशील के पिता को बुला कर उन्होंने कहा—'इस बार सुशील की देख-भाल विशेष रूप से करनी होगी यदि अब रोग ने आक्रमण कर दिया तो...।'

डाक्टर ठिठका। ला० चंद्रसेन ने कहा—'जानता हूँ डाक्टर! जानता हूँ।'

'यही समय है जब रोग आक्रमण करता है।'

'जो अब हमने बारी-बारी से रात को जागने का प्रोग्राम बनाया है, उसकी एक ममेरी बहन को भी बुला भेजा है ।'

क्षण भर डाक्टर ने शून्य में जाकर फिर कहा—'दो-चार दिन मैं भी रहना चाहूँगा ।'

'आप !'

'हाँ मैं ।'

करुण स्वर में ला० चन्द्रसेन ने कहा—'डॉक्टर ! आपने क्या नहीं किया । आपकी कृपा से ही सुशील बार-बार मौत के मुँह में जा कर भी लौट आता है । आप अब इतना कष्ट न कीजिये...।'

डॉक्टर गम्भीरता से बोले—'मैं रोगी का अध्ययन करना चाहता हूँ ।'

'जी ।'

'और वह भी कुछ दूर से ।'

'आपका मतलब ?'

'मतलब यह है कि मैं आपके कमरे में रह कर सुशील की देख-भाल करूँगा और हाँ ! यह बात किसी से कहिये नहीं । माँ से भी नहीं ।'

लाला जी के मन में कुछ अजीब-सा तो लगा पर गर्व भी कम नहीं हुआ । घर आकर यह बात वे सुशील की माँ से कहते-कहते तनिक ही बचे । आज डॉक्टर कहते थे ''इतना

जैसे उन्हें होश आया । चुप हो गये ।

सुशील की माँ बोली—'डॉक्टर क

'यही'—उन्होंने कुछ याद करते हुये कहा—'कि मैं आज गाँव जा रहा हूँ। सुशील को लौट कर रात के समय देखूँगा।'

फिर करुण स्वर में बोले—'कितना भला डाक्टर है।'

'साक्षात् भगवान का रूप है'—माँ ने प्रशंसा की—'हमें तो वही जिला रहा है।'

उसने यह बात सच्चे मन से कही थी। दोनों पति-पत्नी तब देर तक भले आदमियों की चर्चा करते रहे। दिन बीत गया। थके हुये जीवन को सहलाने के लिये रात आ पहुँची। अन्धकार में दृष्टि न हो, पर शान्ति अवश्य है। यही शान्ति मनुष्य का जीवन है। उसी शान्ति में डॉक्टर आ पहुँचे। उन्होंने सुशील को गुदगुदाया, हँसाया, दवा बताई और लौट चले। अपने घर नहीं पास के कमरे में। ला० चन्द्रसेन वहीं रहे, माँ भी वहीं थी, सुशील को नींद आ गई। माँ ने लैम्प बुझा दिया, दीवा जलता रहा। उसका धुँधला पर शीतल प्रकाश तन मन दोनों को सुखकारी था। कुछ देर में ला० चन्द्रसेन भी उठे, बोले—'जब तुम सोने लगो तो मुझे पुकार लेना।'

और वे भी चले गये। धीरे-धीरे चारों ओर शान्ति छा गई। सुशील के पास बैठी माँ की पलकें भारी हुईं और फिर झुक गईं। पर डॉक्टर की आँखों में नींद नहीं थी। वे कभी कुर्सी पर बैठे रहते, कभी टहलते, कभी धीरे से खिड़की में से देख लेते। लाला जी भी दिल में उत्सुकता भरे उन्हें देखते और पूछ बैठते—'डॉक्टर! कोई बात देखी?'

डाक्टर मुस्कराता—'आप चिन्ता न करें।'

और फिर सन्नाटा, किसी के खखारने और चलने का शब्द, गीदड़ों की चीखें और फिर मौन, डॉक्टर की धीमी पदचाप, फिर एकाएक कुत्तों की भौं-भौं! दीवार की घड़ी ने दो बजा दिये तभी सहसा डाक्टर चौंक उठे। उन्होंने धीरे से लाला जी को जगाया 'हाँ,—हाँ, बोलिये नहीं! चुपचाप मेरे पीछे खिड़की के पास चले आइये।'

'क्या है?'

'आ जाइये चुपचाप।'

दोनों ने देखा—धुँधले प्रकाश में एक मूर्ति धीरे-धीरे सुशील की खाट के पास पहुँची है। उसने कई क्षण चुपचाप सुशील के मुख को देखा, फिर उसे चूमा, फिर धीरे-धीरे काँपते हाथों से चादर उतार दी। सुशील एक बार खांसा, फिर पैरों को पेट में समेट लिया। छाया-मूर्ति पीछे हटी। मेज पर दवा की शीशी रखी थी, उसे उठाया और उसे चिलमची में फेंक दिया।

चित्र लिखित सा डॉक्टर बोला—'देखा।'

चन्द्रसेन तड़प उठे—'डॉक्टर! यह तो सुशील की माँ है!'

'हाँ! आइये!'

'डॉक्टर मैं···मैं...।'

'आइये।'

डाक्टर ने आगे बढ़ कर किवाड़ खोले और सुशील के कमरे में चले आये, शान्त, स्वाभाविक! छाया-मूर्ति ने सहस

मुड़ कर देखा, उसके मुँह से एक चीख निकली—आप...आप! और वह तीव्र वेग से काँपती हुई पीछे हटी, हटती गई, काँपती गई और फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ी। ला० चन्द्रसेन उधर दौड़े, इधर डॉक्टर ने सब से पहले खिड़की बन्द की। फिर सुशील का कपड़ा उढ़ाया। तब सुशील की माँ की ओर झुके। वह बेहोशी में बड़बड़ा रही थी—सुशील अच्छा हो रहा है...वह कालेज जायेगा—डॉक्टर बनेगा...और फिर नहीं लौटेगा... उसके भाई भी नहीं लौटे थे...नहीं, नहीं वह शहर नहीं जा सकता—वह मुझे नहीं छोड़ सकता...।

डाक्टर ने सुना, पिता ने सुना, दोनों ने एक दूसरे को देखा। पिता सिर से पैर तक सिहर उठे, मुँह से निकला—'डॉक्टर...!'

डॉक्टर ने गम्भीर स्वर में कहा—'मुझे यही डर था।'

'माँ का स्नेह पुत्र का काल बना हुआ है, डॉक्टर।'

सहसा डॉक्टर का स्वर कठोर हो उठा, उन्होंने कहा—'स्नेह नहीं यह मनुष्य का स्वार्थ है जो प्रतिक्षण मनुष्यता की हत्या करता रहता है।'

पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। माँ का स्वर शिथिल हो रहा था इतना कि मात्र फुसफुसाहट शेष रही थी और सुशील सो रहा था—शान्त, निर्द्वन्द्व।

रांगेय राघव

# नई ज़िन्दगी के लिए

हम नौ लड़कियाँ थीं। मेरी उम्र उस समय क़रीब पन्द्रह साल की थी। मैं समझदार थी। अब जब मैं स्वयं तीन बच्चों की माँ हो चुकी हूँ मेरा दृष्टिकोण बहुत बदल गया है, पर तब नई उमर थी। तब क्या मैं इतनी अक़्ल रखती थी कि असलीयत को समझ पाती। लेकिन तुम्हें उसी समय की बात सुनाती हूँ। पन्द्रह साल में ही मुझे काफी काम करना पड़ता था। मेरी माँ को मुझसे बहुत अधिक स्नेह था।

माँ के एक और प्रसन्न होने वाला था। उनके नौ बार लड़कियाँ हो चुकी थीं और एक दूसरी बहिन में समय का इतना कम अन्तर होता था कि उन्हें सँभालना काफी कठिन हो गया था। कौन जाने घर में अब भी वही चार साल पुरानी हालत चल रही हो।

मुहल्ले में किसी किसी के ही घर में नल था। हम सड़क से पानी भर लाया करती थीं। जब मैं नल पर पानी भरने लगी, ठकुराइन ने पूछा—क्यों, तेरी माँ के कुछ होने वाला है?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार कर दिया। ठकुराइन भला चुप क्यों होती? पूछ बैठी कितने दिन रहे?

मैंने दबी ज़बान से कहा—जल्दी ही

मुड़ कर देखा, उसके मुँह से एक चीख निकली—आप...आप ! और वह तीव्र वेग से काँपती हुई पीछे हटी, हटती गई, काँपती गई और फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ी। ला० चन्द्रसेन उधर दौड़े, इधर डॉक्टर ने सब से पहले खिड़की बन्द की। फिर सुशील का कपड़ा उढ़ाया। तब सुशील की माँ की ओर झुके। वह बेहोशी में बड़बड़ा रही थी—सुशील अच्छा हो रहा है...वह कालेज जायेगा—डॉक्टर बनेगा...और फिर नहीं लौटेगा... उसके भाई भी नहीं लौटे थे...नहीं, नहीं वह शहर नहीं जा सकता—वह मुझे नहीं छोड़ सकता...।

डाक्टर ने सुना, पिता ने सुना, दोनों ने एक दूसरे को देखा। पिता सिर से पैर तक सिहर उठे, मुँह से निकला—'डॉक्टर...!'

डॉक्टर ने गम्भीर स्वर में कहा—'मुझे यही डर १

'माँ का स्नेह पुत्र का काल बना हुआ है, डॉक्टर।'

सहसा डॉक्टर का स्वर कठोर हो उठा, उन्होंने व

नहीं यह मनुष्य का स्वार्थ है जो प्रतिक्षण मनु

करता रहता है।'

पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। माँ व

रहा था इतना कि मात्र फुसफुसाहट शेष

सो रहा था—शान्त, निर्द्वन्द्व ।

हृदय भीतर से घुमड़-घुमड़ कर आँखों की राह निकलने लगता, पर उन पर इन सबका कोई असर नहीं होता। छोटी-छोटी बच्चियाँ अपने छोटे-छोटे हाथों से मुझे सहला कर सांत्वना देतीं। उनका मूक आश्वासन बहुत सहायक होता। सच वे बहुत कठोर थे। मैं सोचती। हे भगवन् ! दिन भर काम करती हूँ। सब घर सँभालती हूँ, पर ये नहीं ठीक रहते। मैं सखी-सहेलियों की ओर देखती, जिनके पिता उन्हें प्रेम करते थे। तब मुझे लगता कि मेरे पिता मनुष्य नहीं थे। शायद उनमें हृदय नहीं था। कभी-कभी क्रोध बढ़ने पर मार-मार कर वे बेहोश कर देते और बच्चियों की कोमल देहों पर नीले-नीले दाग़ पड़ जाते। जब उनका उठा हुआ हाथ चलता ही जाता और बच्चियों के शोर से घर फटने लगता तथा घर में कुहराम मच जाता तब पड़ौस की बुढ़िया दादी का स्वर सुनाई देता—कन्या पर हाथ उठा रहा है चिरंजी ? यह तो कोई रीत नहीं है। अरे तेरे घर में जनम लिया है निठुर ! निर्दयी बस कर, क्यों हत्या कर रहा है।

उस स्वर को सुन कर पिता जैसे चौंक उठते और लौट पड़ते। उनका सिर झुक जाता और वे सूनी आँखों से देखने लगते।

इधर माँ की हालत पहले से भी खराब हो गई थी। वे बाबू जी की मनोव्यथा से पूर्णतया परिचित थीं। आजकल कभी-कभी उन्हें उल्टी हो जाती, कभी मन पि [illegible] ता। [illegible]

दर्द बढ़ गया था। हाथ-पाँव पीले पड़ चले थे। और मैं जब उन्हें देखती सदैव उनकी आँखों में एक भय दिखाई दिया करता था।

बाबू जी दिन भर पूजा करते। दफ्तर में भी मुँह में हनुमान गुटका रखते, जो बाबा साँवलदास ने उन्हें पुत्र होने के लिये दिया था। उन्होंने कहा था-इस मन्त्र से कुछ भी बढ़ कर नहीं। अगर यह भी काम नहीं देता तो समझ ले तेरे भाग्य में आटे का लड़का भी नहीं लिखा है। पिता जी ने इसे देव-वाक्य समझ कर मन में धारण कर लिया था।

शाम को जब पीपल की खड़खड़ाहट सुनाई देती, जब अँधेरे में मन्दिर का गंध भरा धूँआ गली में लौटने लगता और घर के बाहर के उस तिकोने चबूतरे पर छा जाता, एक छोटे-से निवाड़ के खटोले पर मैं बैठी अपनी आठवीं और नवीं बहिन को पुचकारती हुई खिलाया करती। कभी-कभी तो मुझे फुर्सत मिलती थी। बस उन्हें बुलाया नहीं कि एक छोटे-छोटे पैरों से चलती हुई आती और दूसरी घुटने के बल सरकने लगती। मुझे दोनों अत्यन्त प्रिय मालूम देतीं। बेचारी। उन्हें कोई स्नेह तक देने वाला न था।

नींद मुझे इतनी गहरी आती कि ज़रा-सा लेटते ही सारी सुधबुध खो जाती, फिर कोई कितनी ही आवाज़ें दे, सहज में नहीं उठती थी। ठकुरानी मुझ से कहती थीं—क्यों पैदा हो गई हो कम्बख्तो ! क्या बाबू जी को ज़िन्दा ही मार डालोगी ?

जब मैं यह सुनती तनमन रुआँसा होने लगता। इसमें हमारा क्या दोष था। पर जब मैं माँ को देखती तो लगता वह सब झूठ था। माँ की आँखों में दुःख ही दुःख था, पर जब मुझे देखती तब उनमें एक याचना होती। मैं उस दृष्टि की दयनीयता को देख कर माँ की गोद में सिर रखकर उन्हें हँसाने लगती थी। मैं समझती तो थी, पर बात की असलीयत को मुझे अभी तक तोलना नहीं आता था।

ठकुरानी कहती थी—मारता है? अरे मारेगा नहीं। नौ-नौ बाघ जिसे पालने पड़ें उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो जायगी? एक नहीं रहोगी। उमर आने पर कम्बल से झाड़-झाड़ कर चल दोगी। बेचारे बूढ़े को कंगाल कर जाओगी और उसकी देख-रेख करने वाला तक कोई न रहेगा। कहीं किसी ने उसका मुँह भी काला कर दिया तो बेचारे को डूबने तक की ठौर नहीं मिलेगी। राम राम! एक हो, दो हो। पूरी फौज है। बाप रे! कन्यादान करते-करते ही बेचारे के घुटने टूट जायेंगे।

जब ठकुरानी मुझसे ये बातें करती मैं घर आकर चुपचाप खाट पर पड़ जाती। तब क्या हमें मर जाना चाहिए?

सदा की भाँति इस बार भी बुआ के घर से पहले ही से कुर्ता, टोपी आगये, जिन्हें देख कर मैं समझी कि निश्चय ही अब की बार मेरे एक भाई पैदा होगा। मैंने माँ को दिखाये। शाम को जब पिता जी घर आये तो मैंने खुशी-खुशी जाकर कहा—बाबू जी!

उन्होंने गरज कर कहा—क्या है? सब सुना है।

माँ से बाबू जी की एक दिन रात की बात मैंने सुन ली।

बाबू जी कह रहे थे—अगर तुझ जैसी अभागिन मेरे घर न आती तो क्यों मेरी ज़िन्दगी हराम होती। अब वह बुढ़िया तो जिन्दा नहीं है, जिसने पहली दो बहुएँ मरने पर हाय-हाय करके खा डाला था कि बेटा! ब्याह कर। वर्ना घर का दीप बुझ जाता है। अब जल रहे हैं न चिराग़। दिन में भी नहीं बुझते।

उनके स्वर में क्रोध था। माँ ने धीरे से कहा—यह तो किसी के बस की बात नहीं। जो भगवान देता है, वह तो सब लेना ही पड़ता है। अगर ऐसा ही है तो दो-चार का गला घोंट कर अपने को आज़ाद कर लो। उनकी ज़िन्दगी भी हराम करने से क्या मिल जायगा?

बाबूजी कभी यहाँ दौड़ते, कभी वहाँ। वे हाँफ रहे थे। उनका भाल विकृत हो रहा था। मुझे उनको देख कर एक भय होने लगा। ऐसा लग रहा था कि आज वे किसी जंग पर चढ़े हुए थे। ऐसा होने वाला था, मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया। तभी पिता जी का स्वर सुनाई दिया। उन्होंने पुकार कर कहा—दाई आ गई है।

एक बूढ़ी ने भीतर प्रवेश किया। मैं उसे जानती थी। वह हमारे घर अक्सर आती थी और हमारे परिवार की अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित थी। बिना मेरी सहायता के ही उसने

अपनी राह ढूँढ़ ली और भीतर के अन्धेरे कमरे में चली गई जहाँ मद्धम-सा दीपक जल रहा था।

मैं कभी भीतर जाती, कभी बाहर। मेरा दिमाग बिल्कुल बेकार-सा हो गया था। दाई ने मुझे देखा तो कहा : जा बेटी! थोड़ी देर जाकर सो रह। तुझे इतनी मेहनत की क्या जरूरत है। जब जरूरत होगी तुझे जगा लूँगी।

मैंने उसमें देवी का अंश देखा। वह मुझे अत्यन्त करुणा-मयी दिखाई दी। डरती-डरती मैं अपनी कोठरी में आकर खाट पर पड़ी रही। थकान से शरीर चूर-चूर हो रहा था। पड़ते ही मुझे नींद आ गई।

एकाएक घर में बड़े जोर का शोर हुआ। नींद में पहले तो मैं समझ नहीं सकी। पर जब कोई आकर मेरी खाट से टकराया और गिर पड़ा, हठात् मैं जाग उठी। एकदम आँख खोलने से पहले तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पर धीरे-धीरे मैंने पहचाना। वह सुखदा थी। एक-एक करके सब बच्चियाँ मेरे पास इकट्ठी हो गई थीं।

मैंने फटी हुई आँखों से देखा। जैसे अभी अभी उन पर हमला हुआ था, सुखदा फूट-फूट कर रो रही थी। बाकी बच्चियों में से कोई सिसक रही थीं। कोई डर से चुप हो गई थीं। मेरे सिर में दर्द होने लगा। बड़ी कठिनता से मैंने उनको धीरज बँधाया। जब वे चुप हुईं तब मैं उठ कर कमरे के बाहर आई।

जो देखा उससे जैसे मुझ पर भयानक चोट हुई। हृदय टूक-टूक हो गया।

बाबू जी देहलीज़ पर सिर तोड़ रहे थे। मुझे लगा कि काटने पर भी अब मेरे शरीर से लहू नहीं निकलेगा। घर में एक भयानकता छा गई थी। मैंने माँ के कमरे की ओर पग उठाया। दाई ने मुझे हेरा और दया से मेरी ओर देखा। मैं कुछ नहीं समझी। मैंने पूछा : क्या हुआ ?

सुना, मेरी एक और बहिन हुई थी।

## अक्षम्य

पन्द्रह सहस्त्र वर्ष पहले की बात है।

अतलांतिक महासागर में उन दिनों पुष्यदोनिस नाम का एक भूमि-प्रदेश था और उस प्रदेश पर एक समृद्ध शासन का विस्तार था। यह पुष्यदोनिस द्वीप पूर्व युग के डूबे हुए कुश महाद्वीप का एक अंश था।

उस शिक्षित, समृद्ध शासन में एक वर्ष ऐसा हुआ कि सभी नवजात बच्चे कुरूप पैदा होने लगे।

उत्पन्न और गर्भस्थित बच्चों के माता पिताओं को तथा राज्याधिकारियों और धर्माधिकारियों को चिन्ता हुई। स्वास्थ्य और सौन्दर्य उस जाति मात्र की सबसे बड़ी और सब से प्रिय सम्पत्ति थी।

यही दशा रही तो आधी शताब्दी के भीतर ही भूगोल की यह जाति, जिसे अपनी सुन्दरता और संस्कृति पर इतना गर्व था, कुरूपता और पतन के अंधकार में विलीन हो जायगी, उन्हें भय हुआ।

राज-भवन में धर्माधिकारियों की एक बड़ी

"समुद्र-द्वार पर देवी अदोलिमा की मूर्ति

भरी सभा में एक युवक धर्माधिकारी ने

तो नहीं है ?" प्रधान धर्माधिकारी का स्वर उसके सामने रक्खे हुए स्वर प्रसारण यंत्र के द्वारा उस पाँच कोस के घेर में बैठे हुए जन-समुदाय के प्रत्येक कान में ध्वनित हुआ।

उन दिनों का वह साम्राज्य बौद्धिक विकास और एकत्व की भावना में इतना जगा हुआ था कि एक व्यक्ति की भी असहमति या अश्रद्धा होने पर कोई सार्वजनिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था। अतएव धर्माधिकारी का यह प्रश्न था।

"जिस हाथ से इस मूर्त्ति का निर्माण हुआ है उसमें वासना का एक कलंक है। उसने वासना से प्रेरित होकर एक रमणी का स्पर्श, और इस प्रकार सौन्दर्य का अपमान किया है। उस हाथ की गढ़ी हुई यह मूर्ति अपवित्र और अश्रद्धेय है।" सभा में उपस्थित एक सुन्दरी रमणी का ही स्वर था।

लोगों ने अपने अपने दूरवीक्षण और स्वर-ग्राही यंत्र सम्हाल लिये थे।

सभाओं में क्षण भर को निस्तब्धता छा गई।

"मूर्त्तिकार ! तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा है।" प्रधान धर्माधिकारी ने कहा।

मैं दूसरे हाथ से दूसरी मूर्त्ति का निर्माण करूँगा।" मूर्त्तिकार ने मानों उस आरोप को स्वीकार करते हुए कहा।

आगे किसी विवाद का अवकाश नहीं था। सभा विसर्जित हुई।

शशिशिखा का दूसरा प्रयास प्रारंभ हुआ। शिल्प-काल में उसका दाहिना हाथ उसकी कमर के पास बँधा रहता था, जिससे

किसी असावधानी में भी उसका उपयोग न होने पाये। एक वर्ष के परिश्रम से शशिरिवा ने बाएँ हाथ से देवी की दूसरी मूर्ति निर्मित करली। मूर्ति पूर्ववत् ही सुघड़ थी।

पूर्ववत् फिर देशवासियों की सभा जुड़ी।

"जिन आँखों के निरीक्षण में इस मूर्ति का निर्माण हुआ है उनमें वासना का कलंक है। उन्होंने वासना से प्रेरित होकर एक रमणी के रूप-रस का पान और इस प्रकार सौन्दर्य का अपमान किया है। अतएव यह मूर्ति अपवित्र और अश्रद्धेय है।" उसी रमणी ने अब की बार फिर आक्षेप किया।

शशिरिवा से इसका उत्तर माँगा गया।

"मैं आँखों पर पट्टी बाँधकर बाएँ हाथ से देवी की नई मूर्ति का निर्माण करूँगा।" शशिरिवा ने अब की बार भी मानों यह आरोप स्वीकार किया।

सारी सभा में निराशा का एक नीरव आतंक छा गया। आँखों में पट्टी बाँध कर शशिरिवा मूर्ति का निर्माण करेगा—यह असम्भव है। यह मूर्ति कभी भी देवी अदोलिमा के आदेश के, उसकी चेतना के प्रवेश के—योग्य नहीं हो सकेगी। देश के दुर्दिन और विनाश का यह स्पष्ट आभास है। इस राष्ट्रीय अपराध का वास्तविक अपराधी कौन है, शशिरिवा या वह रमणी? इन्हीं विचारों में डूबता—उतराता वह विशाल जन-समुदाय छिन्न-भिन्न हो गया।

किन्तु शशिरिवा ने अब की बार भी यह मूर्ति बना ली। अब की बार मूर्ति के निर्माण में उसे दो वर्ष लगे।

[illegible]

[illegible]

भीत थे।

"चार वर्षों में हमारी चालीस सहस्र से ऊपर जन-संख्या लुप्त हो चुकी है। इस महारोग पर प्रतिबन्ध न लगा तो अगले पचास वर्षों में हमारी जाति ही संसार से मिट जायगी। सुन्दरी विनोमा का अब भी हमारे राष्ट्र-मूर्तिकार की कृति पर कोई आरोप है?" प्रधान धर्माधिकारी ने भरे हुए स्वर में समीप बैठी हुई उसी रमणी विनोमा को लक्ष्य कर पूछा।

"राष्ट्र की रक्षा के लिए यदि इस मूर्तिकार की बनाई हुई मूर्ति में देवी अदोलिमा की प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकती है तो मैं अब पक्ष और विपक्ष, दोनों पक्षों से अलग होकर मान लेती हूँ। मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगी। मूर्ति में यदि देवी का आदेश हो सका तो यह स्वयं ही दोष-अदोष का निर्णय करेगी।" विनोमा ने अपने क्षोभ को नियन्त्रित करते हुए मार्ग दिया।

देवी अदोलिमा की भव्य मूर्ति के घुटनों के बराबर ऊँचाई पर मूर्ति से सटे हुए एक ऊँचे आसन पर एक अन्य युवती को बिठाया गया। वह युवती देवी की बोलिका—मध्यमा थी। मूर्ति में देवी का आदेश होने पर इस युवती के मुख से ही देवी का संदेश प्राप्य होता था।

नियमित अनुष्ठान के पश्चात् जन-समुदाय की मूक आँखें देवी की मूर्ति और उस बोलिका युवती पर प्रतीक्षा में आ टिकीं।

बोलिका की बन्द पलकें उठीं और होठ हिले; और सबने अदोलिमा देवी का स्निग्ध, परिचित स्वर सुना।

"सौंदर्य-साधना से विकसित हुई इस जाति के किसी व्यक्ति ने सौन्दर्य की अवहेलना की है। उसी का कुपरिणाम आपके सामने है। यदि यह व्यक्ति-विशेष उस अवहेलना का परिणाम अपने ऊपर लेने को प्रस्तुत हो जाय तो समूचे राष्ट्र पर से यह दण्ड उठाकर उसी पर रक्खा जा सकता है।

"अपराध मेरा है तो इसका सम्पूर्ण दण्ड अपने ऊपर लेने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।" लोगों ने यह दूसरा स्वर सुना; चार पहियों पर खिचने वाले एक छोटे-से काष्ठ-खंड पर खड़ा हुआ शशिरिवा बोल रहा था। उसकी आँखों पर पट्टी बँधी हुई थी और उसका दाहिना हाथ उसकी कमर के पास बँधा हुआ था।

"सुन्दरी विनोमा !" देवी अदोलिमा का आदेश हुआ, "मेरी आज्ञा है, तुम अपने अपराधी शशिरिवा को यथेच्छ दण्ड दे सकती हो।"

अपनी क्षुब्ध प्रतिहिंसा की संतुष्टि का सुयोग पाकर विनोमा का इतने दिनों से बहुत कुछ दबा हुआ क्रोध उमड़ पड़ा।

"सौन्दर्य को अपमानित करने वाले हाथ निर्जीव और सौन्दर्य पर कलुषित दृष्टि डालने वाली आँखों को ज्योति-हीन ही हो जाना चाहिये।" विनोमा ने शाप दिया।

शशिरिवा की आँखें तत्क्षण ज्योतिहीन और उसका दाहिना

दो वर्ष पश्चात् फिर नियमानुसार सभा जुड़ी।

देवी अदोलिमा की मूर्त्ति उतनी ही यथावत्, उतनी ही सुन्दर थी।

देश-वासियों ने उस मूर्त्ति को देखा। उनकी पहली आशंका मिट चुकी थी। फिर भी किसी नये आक्षेप के भय से उनके हृदय भयभीत थे।

"चार वर्षों से हमारी चालीस सहस्र से ऊपर जन-संख्या कुरूप हो चुकी है। इस महारोग पर प्रतिबन्ध न लगा तो अगले पचास वर्षों से हमारी जाति ही संसार से मिट जायगी। सुन्दरी विनोमा का अब भी हमारे राष्ट्र-मूर्तिकार की वृत्ति पर कोई आरोप है?" प्रधान धर्माधिकारी ने भरे हुए स्वर में समीप बैठी हुई उसी रमणी विनोमा को लक्ष्य कर पूछा।

"राष्ट्र की रक्षा के लिए यदि इस मूर्तिकार की बनाई हुई मूर्ति में देवी अदोलिमा की प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकती है तो मैं अब पक्ष और विपक्ष, दोनों पक्षों से अलग होकर मान लेती हूँ। मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगी। मूर्ति में यदि देवी आ आदेश हो सका तो यह स्वयं ही दोप-अदोप का निर्णय करेगी।" विनोमा ने अपने क्षोभ को नियन्त्रित करते हुए मार्ग दिया।

देवी अदोलिमा की भव्य मूर्ति के घुटनों के बराबर ऊँचाई पर मूर्ति से सटे हुए एक ऊँचे आसन पर एक अन्य युवती को बिठाया गया। वह युवती देवी की बोलिका—मध्यमा थी। मूर्ति में देवी का आदेश होने पर इस युवती के मुख से ही देवी का संदेश। प्राप्य होता था।

नियमित अनुष्ठान के पश्चात् जन-समुदाय की मूक आँखें देवी की मूर्ति और उस बोलिका युवती पर प्रतीक्षा में आ टिकीं।

बोलिका की बन्द पलकें उठीं और होठ हिले; और सबने अदोलिमा देवी का स्निग्ध, परिचित स्वर सुना।

"सौंदर्य-साधना से विकसित हुई इस जाति के किसी व्यक्ति ने सौन्दर्य की अवहेलना की है। उसी का कुपरिणाम आपके सामने है। यदि यह व्यक्ति-विशेष उस अवहेलना का परिणाम अपने ऊपर लेने को प्रस्तुत हो जाय तो समूचे राष्ट्र पर से यह दण्ड उठाकर उसी पर रक्खा जा सकता है।

"अपराध मेरा है तो इसका सम्पूर्ण दण्ड अपने ऊपर लेने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।" लोगों ने यह दूसरा स्वर सुना; चार पहियों पर खिंचने वाले एक छोटे-से काष्ठ-खंड पर खड़ा हुआ शशिरिवा बोल रहा था। उसकी आँखों पर पट्टी बँधी हुई थी और उसका दाहिना हाथ उसकी कमर के पास बँधा हुआ था।

"सुन्दरी विनोमा !" देवी अदोलिमा का आदेश हुआ, "मेरी आज्ञा है, तुम अपने अपराधी शशिरिवा को यथेच्छ दण्ड दे सकती हो।"

अपनी क्षुब्ध प्रतिहिंसा की संतुष्टि का सुयोग पाकर विनोमा का इतने दिनों से बहुत कुछ दबा हुआ क्रोध उमड़ पड़ा।

"सौन्दर्य को अपमानित करने वाले हाथ निर्जीव और सौन्दर्य पर कलुषित दृष्टि डालने वाली आँखों को ज्योति-हीन ही हो जाना चाहिये।" विनोमा ने शाप दिया।

शशिरिवा की आँखें तत्क्षण ज्योतिहीन और उसका दाहिना

हाथ निर्जीव हो गया। उसकी आँखों की पट्टी खोल दी गई। हाथ हिल न सका।

और साथ ही विनोमा की ओर घूमी हुई आँखों ने देखा, सुन्दरी विनोमा अनायास ही इतनी कुरूपा हो गई थी कि उसे कोई विनोमा कह ही नहीं सकता था।

"विनोमा का शाप फलित हुआ है, किन्तु प्रतीत होता है कि उसके शाप में कोई अनौचित्य है। देवी विनोमा के परिवर्तित रूप का परिचय उसके समीपवर्ती-जन उसे करायेंगे।" देवी अदोलिमा कह रही थी।

अपनी कुरूपता का ज्ञान पाकर विनोमा मूर्छित होकर गिरते गिरते बची।

"शशिरिवा ने अपने हृदय की वासना से सौन्दर्य का अपमान किया है, या विनोमा ने अपनी अनुदार प्रवृत्ति द्वारा सौंदर्य की उपासना का अपमान किया है, यह अब सबके सामने प्रकट है। पिछले जातीय संकट का रहस्योद्‌घाटन हो चुका है। किन्तु जब तक जाति के अंतर्गत कोई भी दो व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके बीच किसी प्रकार के अपूर्त प्रतिशोध की भावना विद्यमान हो तब तक इस जातीय विपत्ति का निराकरण नहीं हो सकता। शशिरिवा को विनोमा ने जो अन्यायपूर्ण शाप दिया है उसका प्रतिशोध करने के लिए यह विनोमा को यथेच्छ दण्ड देकर अपना हृदय हलका कर सकता है, मेरी आज्ञा है।" देवी अदोलिमा का स्वर ध्वनित हुआ।

"विनोमा से मेरे प्रति यदि कोई अन्याय हुआ है तो, मैं

...हा हूँ, उसका दण्ड उसे साथ ही मिल चुका है। मेरे मन ...सके प्रति किसी प्रतिशोध की भावना नहीं है, प्रत्युत् मैं ...की परिस्थिति से दुखी हूँ।" शशिरिवा ने कहा।

"शशिरिवा का कथन साधु है। वह माँगे तो मैं उसे उसकी ...आँखों की ज्योति लौटाने के लिए प्रस्तुत हूँ। विनोमा अपना ...ूरा अवसर ले चुकी है।" देवी ने कहा।

"देवी अपने अनन्य उपासक शशिरिवा पर प्रसन्न हैं तो वह अपनी आँखों की ज्योति का प्रत्यावर्तन अवश्य माँगेगा, किन्तु किसी भी सौन्दर्य के नहीं, सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन के लिए ही।" शशिरिवा कह रहा था।

देवी के होंठों पर एक मुस्कान दौड़ गई। "तथास्तु" उसके मुख से निकला, और उसकी आँखें और होंठ बन्द हो गये।

शशिरिवा की आँखें दीप्त हो उठीं। विनोमा को खोजती हुई वे उसी पर जा टिकीं।

विनोमा फिर वही सुन्दरी विनोमा हो गई थी। विनोमा ने उस भरी सभा में शशिरिवा के पास आकर उसके निम्नार्द्ध पगों को अपनी बाँहों में बाँध लिया।

"पूज्य कलाकार! मेरे अपराधों को क्षमा करोगे?" वह कह... रही थी।

शशिरिवा ने कुछ उत्तर दिया, पर उसकी आँखें खुली न र... सकीं, उसका हाथ हिल न सका।

सौन्दर्य के अपराध का दण्ड किसी न किसी को अ...

ऊपर लेना आवश्यक था और शशिरिवा उसे किसी दूसरे पर नहीं आने देना चाहता था।

सभा विसर्जित हो गई।

   

दूसरे दिन प्रातः समुद्र-तटों पर चालीस सहस्र बाल-शव प्रवाहित किये जा रहे थे। कुरूपता के अभिशाप का निवारण हो चुका था। सुन्दरी विनोमा ने शशिरिवा को क्षमा कर दिया था, किन्तु अब विनोमा को क्षमा कर उसके हृदय का संताप मिटाना किसी के वस की बात न रह गई थी।

सुभद्राकुमारी चौहान

# बड़े घर की बात

फूलशय्या के ही दिन फूल और मनोहर में तनातनी हो गयी। फूल स्वभाव से ही कम बोलनेवाली और लजीली थी। उधर मनोहर ऐंग्लो-इण्डियन छोकरियों के साथ सिनेमा थिए-टर देख चुके थे, उनकी उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता के आदी थे। वे सपना देख रहे थे कि उनके कमरे में पैर रखते ही नववधू मुस्कराती हुई 'हल्लो डार्लिंग' कहकर उन्हें बिठायेगी, उनसे घुल-घुलकर प्रेम की बातें करेगी और उन्हें ज़बरन अपने पास बिठा रखेगी, वे उठना चाहेंगे तो वह उठने न देगी, लच्छे-दार बातों से उन्हें उलझा रखेगी, घड़ी के जाते हुए समय को 'एनिमी' (दुश्मन) कहकर अफसोस करेगी। ये आशा उन्होंने नववधू से इसलिए की थीं कि वह मैट्रिक पास थी उसने अपने छोटे से जीवन के अधिकांश दिन बोर्डिङ्ग-ह में ही बिताये थे।

जिस समय मनोहर फूलों का हार गले में डाले बसे बसाये अपने कमरे में आये, नवव चुपचाप एक पुस्तक के पन्ने उलट

आशंका से वह रह-रहकर काँप सी उठती थी। उसके पति होते हुए भी मनोहर आज तो उसके लिए पर-पुरुष ही थे। उनसे कैसे बोलूँगी, क्या कहूँगी, कहीं कोई बेवकूफी न हो जाय। फूल मन ही मन बहुत घबरा रही थी। अचानक किसी के हल्के पैरों की आहट होते ही वह पुस्तक छोड़कर एक कोने में सिमट कर खड़ी हो गयी। मनोहर बाबू अपना यह अपमान न सह सके। एक क्षण तो वह चुपचाप खड़े रहे, फिर तिरस्कार-भरे स्वर में बोले—क्या स्कूल और घर में यही शिक्षा मिली है कि आये हुए पति की तरफ़ पीठ करके खड़ी हो जाओ?

फूल सिहर उठी, किन्तु कुछ बोली नहीं। मनोहर का पारा और गरम हो गया। कठोर स्वर में बोले—मैंने तो समझा था पढ़ी-लिखी है तो कुछ अक़ल भी होगी लेकिन वही गँवार की गँवार।

इस पर भी जब फूल कुछ न बोली—तो वह झलाये हुए उठे और फूल का घूँघट जोर से पीछे से खींच लिया। रेशमी साड़ी थी। मुँह के साथ उसका सिर भी खुल गया, पल्ला पीठ पर आ रहा। फूल बोली तो कुछ भी नहीं मगर फौरन ही अपना सिर ढँककर कमरे से बाहर हो गयी। मनोहर गुस्से से 'शकल चुड़ैलों की नखरे परियों के' कहते कहते सीढ़ियों से नीचे उतर गये, फूल चुपचाप आँसू बहाती हुई खड़ी रही। अचानक मनोहर को बाहर जाते देख उनकी बहिन यशोदा ने आकर पूछा, क्या हुआ भौजी? भय्या क्यों चला गया?

फूल ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी ननद से जो उसकी सास की जगह पर थी कुछ सहानुभूति की आशा रखती थी, मगर यहाँ उल्टा ही हुआ। यशोदा ने फूल को झकझोर कर कहा-बोलती क्यों नहीं चंडालिन? दो बात भय्या से कर लेती तो क्या तेरी ज़बान घिस जाती! एक वह थी जिसने उसके जी को जला-जलाकर उसे आधा कर दिया। अब तू आयी है तो तेरे ये लच्छन! आदमी का मिज़ाज भी देखना पड़ता है। जिससे खुश रहें वही करना चाहिए, पर आजकल की छोकरियों का मिज़ाज भी तो सातवें आसमान पर रहता है।

फूल आँसू बहाती रही। ननद की बातों का भी उसने कोई जवाब न दिया।

इस घटना के बाद कई दिन बीत गये, मनोहर ने पत्नी की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। वे अपने राग-रंग में मस्त थे, विवाह तो उनकी बहिन ने ज़बरदस्ती करवाया था। पहली स्त्री से एक बच्चा था। बच्चा जब तक जीता रहा तब तक तो विवाह की ज़रूरत न जान पड़ी, लेकिन एक दिन जब वह बच्चा भी माँ का अनुगामी हुआ तो इतनी बड़ी जायदाद का कोई वारिस तो होना चाहिए, इस ख्याल से यशोदा ने भाई के सामने रो-धोकर उन्हें ज़बरदस्ती विवाह के लिए मजबूर किया। यशोदा विधवा थी। यह सब जायदाद भी उसी की थी। मनोहर को छः महीने की उमर से पाला था, मनोहर ही उसका पुत्र या भाई सब कुछ था, किन्तु दोनों भाई बहन एक से रूखे स्वभाव के, तुनुकमिज़ाज, बाहर अच्छे और भीतर खट्टे थे। मनोहर

की पहली स्त्री कुमुद ने भी जिस दिन से इस देहली के भीतर पैर रखा था, एक दिन भी विना रोये रोटी न खा सकी थी और इसी प्रकार छः महीने के बच्चे को छोड़कर एक दिन वह ज़हर खाकर अपनी जीवन-लीला समाप्त करके चली गयी। बड़े घर की बात बाहर कहाँ जाती है। हार्टफेल होने से मृत्यु हो गयी कहकर मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया।

फूल ने भी ये सब बातें सुन लीं, मगर अब क्या हो सकता था। उसने सोचा, ख़ैर जैसा जो कुछ है मुझे तो निभाना ही है, अब तो यही मेरे परमेश्वर, मेरे आराध्य और देवता हैं, किसी तरह उन्हें मनाना चाहिए। मुँह से तो कुछ बोलते हुए उसे लज्जा आती थी और बोलने का कोई अवसर भी न मिलता था, इसलिए उसने सोचा, एक पत्र लिखूँ, शायद देवता सीधे हो जायँ। वह काग़ज़ कलम लेकर बैठी। बहुत सोचने-समझने के बाद उसने एक पत्र लिखा—

मेरे देवता,

कई दिनों से सोच रही हूँ कि आपको एक पत्र लिखूँ, परन्तु क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ मेरी समझ में नहीं आता। माना कि मैं अपराधिनी हूँ फिर भी क्या आप मुझे क्षमा नहीं कर सकते? भूल तो मनुष्य से हो ही जाती है। मुझसे भूल हुई और बड़ी भारी भूल हुई, मैंने आपके कोमल हृदय को दुखाया, आपका अपमान किया, आपकी पूजा में त्रुटि की, देवता का सम्मान न कर सकी, न जाने किस अहङ्कार में, किस मद में

बावली हो गयी। किन्तु आप तो क्षमा कर सकते हैं। मुझे आपके चरणों की सेवा का अवसर दीजिए। मेरी त्रुटियों को भूल जाइए, मैं आपके चरणों पर सिर झुका आपसे यही वरदान माँगती हूँ, मेरे स्वामी !

आपकी
अपराधिनी फूल

पत्र समाप्त कर ज्योंही फूल ने पीछे देखा मनोहर खड़े थे। फिर उसी लज्जा और संकोच ने मामला बिगाड़ा। झट से पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर फूल दूसरी तरफ़ खड़ी हो गयी। मनोहर की त्योरियाँ चढ़ गयीं। उनके सिर से पैर तक आग सी लग गयी। फूल के पास पहुँचकर उसे घसीटकर उन्होंने उसका मुँह सामने कर दिया, बोले—किसे पत्र लिख रही थीं, सच कहो !

फूल का सारा शरीर काँप रहा था, वह कुछ भी न बोल सकी।

मनोहर ने उसके कान ऐंठते हुए कहा—बोलो, नहीं तो अभी तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा।

फूल को भी क्रोध आ गया। उसकी मुद्रा कठोर हो गयी, बोली—मैं नहीं बतला सकूँगी, जो कुछ आपको करना हो, कर लीजिए।

फूल का यह कहना था कि बस मनोहर उसको पीट चले। फूल ने ज़बान न हिलायी, मगर वह जब तक बेहोश न हो गयी मनोहर उसे मारते ही रहे।

दूसरे दिन अचानक मुहल्ले भर में यह हवा फैल गयी कि मनोहर की दूसरी स्त्री का भी हार्ट फेल हो गया। अर्थी के साथ बहुत से लोग थे जो असली वाक़्ये से वाक़िफ़ थे मगर शहर के इतने बड़े और पायेदार आदमी के ख़िलाफ़ ज़बान खोलने की किसे हिम्मत थी। उँह, मर गयी तो मर भी जाने दो, स्त्री ही तो थी। कल तीसरी आ जायगी।

# अन्तिम मिलन

गरीब माँ के पेट से जन्म लेने पर भी—सोना का लालन-पालन बड़े घर में हुआ था । बड़े घर के बच्चों के समान ही उसका खान-पान और रहन-सहन था, उन्हीं के साथ रह कर उसने थोड़ा-बहुत लिखना पढ़ना भी सीख लिया था। बुद्धि-चातुर्य और रूप में वह किसी से भी कम न थी। हाँ—स्वभाव उसका सबसे भिन्न अवश्य था, क्रोध तो उसे कभी आता ही न था और न बड़े आदमियों के बच्चों के समान वह उद्दंड थी । बड़ी विनम्र, सेवामयी और सहन-शील थी वह लड़की।

पिता न जाने कब उसे और उसकी माँ को निराधार छोड़ कर परलोक सिधार गया था । सुना यही था कि सोना छः महीने की थी, तभी इस बड़े घर में उसकी माँ ने पैर रक्खा था । घर की जमीन, जायदाद, मकान, दूकान सभी तो सोना के ताऊ चाचाओं ने अपने कब्जे में कर लिया था, यह कह कर कि हिन्दू-समाज में लड़कियों का कोई हक नहीं होता है। हाँ, अगर सोना के कोई भाई होता तो जीता रहने पर सारी सम्पत्ति का मालिक हो सकता था । अब न सोना का कोई अधिकार है, और न उसकी माँ का ही। इस से रह

कर दो रोटी खा सकती है बस। गोमती ने यह सब छाती पर पत्थर रख सुना, और एक बार संसार के कोने कोने में उसकी दृष्टि घूसकर लौट आई, कहीं भी उसे अपना कोई दिखाई न दिया। मैके में कोई था ही नहीं, वहाँ भी ताऊ-चाचा सब सँगवाए बैठे थे और ससुराल वालों का उत्तर वह सुन ही चुकी थी। उसे ऐसा लगा—मानों वह गोमती नहीं—बल्कि उसका नन्हा रूप सोना ही बन गई है, न उसके सँभालने वाला कोई था, न आज सोना को देखने-सुनने वाला कोई है। और तभी उसकी नन्हीं सी सोना ने माँ की छाती में मुँह छिपा लिया था। वह जैसे सजग हो उठी और छः महीने की सोना को लेकर गाँव छोड़ कर, शहर में बड़े जमींदार के यहाँ आ कर रहने लगी, उच्च जाति की होने पर भी उसने छोटे से छोटा काम करना स्वीकार किया, और सम्पन्न घराने की बहू होने पर भी वह सब की भली-बुरी सहने को तत्पर हो गई थी, यद्यपि लोगों ने उसे बदनाम करने में भी कसर नहीं छोड़ी। कोई कहता—"बड़ी बहू की यह मुँह लगी दासी है।" तो कोई कहता "बड़े बा इस पर बड़ी कृपा रखते हैं।" आदि आदि टिप्पणियाँ सुनी ...नी करके वह निरंतर अपने कामों में व्यस्त रह कर अपनी सोना के लालन-पालन में जुट गई थी।

किन्तु भाग्य और भविष्य का क्या पता ... ६ साल की उम्र में ही वह मिडिल कर ही ... उँगलियों से नाप नाप कर उसे पाला था।

( २ )

अच्छा लड़का देख कर उसका विवाह ठीक १२ वर्ष की आयु में ही कर दिया था, जो कुछ गहना पैसा पास था, सब दामाद को सौंप कर, वह उसे परचून की दूकान खुलवा कर निश्चिन्त हो गई थी, पर जैसे वह इसी दिन की बाट देख रही थी—लड़की के विवाह को दो वर्ष भी नहीं हुए थे कि गोमती उसे छोड़कर चल बसी, सोना के ऊपर सहस्र विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा, पति ने जुआ खेलना और शराब पीना शुरू कर दिया, उसे अब डर ही किसका था। सोना रात दिन अपने हड्डे तुड़वा कर भी पति की सेवा में जुटी रहती। जो कुछ मेहनत-मजदूरी कर पाती, पीस कूट कर उसके पेट में दो रोटी डालने की चिन्ता में घुली रहती, वह समझती—"यही तो है नारी का धर्म।" और विहारी? वह शायद यही समझता था कि—"पुरुष का कोई धर्म ही नहीं है।" इसी प्रकार संघर्ष और विपत्तियों के बीच बिना किसी लक्ष्य और उद्देश्य के उन दोनों का जीवन कट रहा था। दूकान उजड़ चुकी थी, धीरे धीरे घर का गहना, कपड़ा और वर्त्तन तक भी विकने लगे, पेट पालने के लिए नहीं, आवारा-गर्दी में ही। सोना सोचती—क्या कभी उसके दिन फिरेंगे? और जैसे स्वयं ही उत्तर सी पा जाती "नहीं।"

अरहर की दाल की खिचड़ी थाली में परोस कर, ने लोटा भर पानी पति के सामने ला धरा और स्वयं

के आँसू—आँखों ही में पी कर एक तरफ कोने में जा बैठी। आज उसकी नस नस में दर्द था, कमर तो जैसी फटी ही जा रही थी। रात की मार से वह अधमरी सी हो गई थी और बिहारी के मुँह से इस समय तक शराब की तेज बू निकल कर मस्तिष्क की नसों को फाड़े डाल रही थी।

बिहारी ने पानी का लोटा खाली करते हुए पूछा—"खिचड़ी और है क्या ?" सोना ने बिना कोई उत्तर दिए रही-सही खिचड़ी भी खुरच-खुर्चा कर बिहारी की थाली में परोस दी, और पतीली में पानी डाल कर माँजने को रख दी।

बिहारी की अन्तरात्मा जैसे जाग्रत हो उठी—"तुमने अपने लिए तो रक्खी ही नहीं, भूखी ही—रहोगी क्या ?"

सोना को ऐसा लगा—"मानों स्वर्ग के देवता आज पृथ्वी पर उतर आए हैं, उसकी माँ-बाप बड़ी बहूजी......और बड़े बाबू, तथा उसका पति बिहारी भी मर कर फिर से देवता बन कर उसके सामने आ बैठा है। वह निहाल हो गई, उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई, कितने दिनों से उसके कान दो मीठे शब्द सुनने को तरस गए हैं, कब से उसका हृदय दुलार के अभाव में सूखता जा रहा है, और न जाने कब से उसकी वाणी मन की दो बातें किसी से कहे बिना कुंठित-सी हो गई है। बोली—"इतनी ही थी, शाम को देखा जाएगा...।'

बिहारी का रोम कटने कटने-सा लगा-"यह उसकी है, वह इसका पति यह कैसा अपनापन है, उसके और भी जान-पहचान वाले हैं, सब कैसा जतन करते हैं...?

उसे पिछले युग की एक एक बात याद आने लगी–"कितना सब लाई थी यह, गहना-कपड़ा, रुपया-पैसा, वर्त्तन-भाँड़े दूकान और घर, सभी तो इसी का था ? मैं तो गरीब बाप का अनाथ लड़का था—आज मैंने ही सब उजाड़ कर इसे भिखारिन बना दिया और खुद गली के कुत्ते के समान घूमता रहता हूँ। गाँठ का पैसा गँवा कर और इसका सारा गहना उतार कर, दूसरों को दे आया। घर के वर्तन तक बेच बेच कर शराब पी गया। न जाने कितनों की झिड़कियाँ सहीं और हाथ जोड़ कर इसी का दिया टुकड़ा खाकर जी रहा हूँ। यह खुद भूखों मर कर भी मुझे जिला रही है, किस सुख की आशा में ?" बिहारी की विचार-धारा मन का बाँध तोड़ कर, आँखों की राह बहने लगी। उसने सोना की कंधों की उभरी हुई हड्डियों पर अपने दोनों हाथ टिका दिये—और अपने गर्म गर्म आँसुओं से उसके सिर का आँचल भिगोते हुये बोला—"सोना! मैं बड़ा पापी हूँ—राक्षस हूँ, और तुम—तुम हो देवी!" सोना को ऐसा लगा मानों उसके दुखते हुए घावों को कोई सेंक रहा है, उसके रिसते हुए फोड़े को कोई दबा रहा है......। सहसा उसने बिहारी की ओर घूम कर देखा—कानों में पड़े हुए भारी भारी झुमके कपोलों को छू गए,—'यही तो माँ की शेष निशानी है, हाथों का आखिरी गहना परिबन्द, तो आप रात ही ले गए थे, बाकी का सब पहले ही स्वाहा हो चुका।' टोकरी भर गहना माँ ने चढ़ाया था उसे...सोचते सोचते सोना का सिर घूमने लगा—उसकी आँखों के आँसू पल भर में सूख गए। उसकी कल्पना का

सुख-स्वप्नवत् विलीन हो गया—"यही तो है, इस बर्बादी का कारण ? आज घर की रानी होती वह, पर है वह भिखारिन से भी बदतर !"

बिहारी और भी भावों में बह चला, उसकी युवा पत्नी भरी जवानी में ही बूढ़ी सी दीख रही है, सोना का सोने-सा रंग फीका पड़ गया—भरा हुआ बदन हड्डियों का ढाँचा रह गया, गहने से लदे हुए बदन पर आज दो काँच की चूड़ियाँ भी ढङ्ग की नहीं। रेशम और 'गड़ाडील' की जगह—गाढ़े की ओढ़नी में सत्तर पेबंद लग रहे हैं आज...? यह सब किसके कारण हुआ है, उसी के न ?"

युवक ने युवती की ठोड़ी में हाथ डालते हुए कहा—"इधर देखो, सोना !"

सोना ने कानों के झुनके उतार कर सिर झुकाए ही पति की ओर बढ़ा दिए। बिहारी के हृदय पर कोड़ा सा लगा—यदि उसमें आज सामर्थ्य होती—यदि आज वह कुछ कर सकता तो सोना को सोने में मढ़ देता—पर—परन्तु अब वह खाली हाथ खड़ा है, उसे ऐसा लगा, मानों वह क्षत्रिय कुल का ही नहीं, बल्कि साक्षात् चांडाल कुल का कलंक है। और यह जो नतमस्तक नारी-प्रतिमा उसके सामने हाथों पर झुनके धरे बैठी है, यह मानों देवी की साक्षात् और सजीव प्रतिमा है, जिसके कांचन से शरीर को उसने तिल तिल करके गला डाला है।

और—और यह जो घर है, यह कभी देव-मन्दिर था। इस स्वर्ग-सी भरी-पूरी गृहस्थी का मानो मरघट बना दिया

है उसने। बिहारी का अंग-अंग जलने लगा, धीरे-धीरे उसने सोना के दुर्बल कंधे पर से अपने वज्र जैसे कठोर हाथों को उठा लिया। एक बार चारों ओर देखा—और चुपचाप दो आँसू ढलका कर घर से बाहर निकल गया। वह बैठी की बैठी रह गई।

पूरे पाँच वर्ष होने को आए, जब सोना का रहा सहा संसार भी धूल में मिल गया था। उसे आज भी उस दिन की एक एक बात याद थी। घंटों बाद जब वह रसोई घर में से उठ कर बाहर आई थी--तब घर का एक एक कोना छान डाला था, कोठा, दालान, चारपाई, पाखाना, छत और चौबारा, ऐसी कोई भी जगह न थी, जहाँ उसने बिहारी को न ढूँढा हो। ऊपर चढ़कर जहाँ तक देख सकी, देख डाला था, पर वह नहीं दीखा। मन की अनेक बातें कहनी थीं—पर कह न सकी। वह क्या ऐसा थोड़े ही जानती थी कि वह बातें पश्चात्ताप की थीं जो उसे इस तरह बर्बाद कर देंगी ? फिर रात आई, बड़ी आशा से उसने उस दिन ऊपर तक तेल पुरा कर दिया जलाया था, पर वह नहीं आये। सवेरे उसने बनिए की दूकान से उधार गुड़ लेकर मीठा भात राँधा था – वह भी यूँही पड़ा रहा, वह नहीं आया। इसी प्रकार दिन और सप्ताह, मास और वर्ष बीतने पर उसे दो सौ रुपये का मनीआर्डर मिला था, उसमें यह भी लिखा था—"घबराना नहीं, जितना खोटा सो सोने में पीली कर दूँगा। तेरे लिए बहुत पैसा जमा कर रहा हूँ, मैंने ऐन्ट्रेंस पास कर लिया है, अब तेरे सामने इंसान बन कर

आऊँगा...,पता नहीं कब लौटूँ, कहीं दूर भी भेजा जा सकता हूँ लड़ाई चल रही है...देखो कब मिलें ?" आदि आदि बातें पढ़कर सोना का फूल सा हृदय बैठ गया—"हाय मैं क्या ऐसा थोड़े ही जानती थी। तभी तो कहते हैं कि मान भी समय समय का ठीक होता है। साथ में दो कपड़े लिए, न हाथ में पैसा। खाना भी पेट भर नहीं खाया था उस दिन तो...।" सोना की छाती फटने सी लगी।

उसने अगली पिछली बातें सोच सोच कर अब तक दिन काटे हैं, खाना-पीना सब छोड़ दिया, न कुछ खाने को मन करता है न बनाने को। पर वह जीना अवश्य चाहती है, केवल एक बार उसे देखने भर की आशा से जिसका उसने कभी अनादर नहीं किया था—और अन्तिम बार वह उसी की उपेक्षा से घर द्वार छोड़ कर लड़ाई पर चला गया। दिन का काम और रात का आराम सभी तो उससे छूट गया। कानों के झुमके फिर कान में कभी नहीं डाले, आँखों में स्याई आँजना तो मुद्दत से छोड़ दिया था। पर अब तीज-त्योहार को चूड़ियाँ ज़रूर बदल लेती है, बिहारी की शुभ कामना के फल-स्वरूप रोज़ गौरी-पूजन भी पास के मन्दिर में जाकर कर आती है। मंगल का व्रत भी रखने लगी है। वैसे तो दो पैसे का चना चबैना चाब कर ही दिन काट देती है, पर मंगल के दिन चार पैसे के बताशे लेकर बच्चों को बाँट कर दो-चार खुद खाकर पानी पी लेती है, बस।

गली मुहल्ले की स्त्रियाँ उसके पास न ज्यादा आती हैं, न उसे किसी से बात करने की फ़ुरसत ही है। बात करे भी तो

क्या ? किसकी बुराई-भलाई करे और किसके आगे दुखड़ा रोवे। वह सब समझती है–रोकर पूछना और हँस कर उड़ाना–संसार की प्रथा है। जब कोई बिहारी के अचानक चले जाने का कारण पूछता है तो कह देती है—"सभी के घर के तो रोज़गार करते हैं, वह भी चार पैसे कमाने गए हैं।"

जब कोई अगली पिछली बातों को उसके सामने दोहराने लगती है तो उसे अच्छा नहीं लगता, वह कह देती है—"ऊँ, आदमी बने रहें पैसे का क्या है, जो खोता है वह कमा भी तो सकता है ? वह पढ़-लिख गए हैं, खो दिया तो क्या हुआ ? अपना ही तो खोया है ? कुछ खोकर ही कुछ मिल पाता है।"

इसीलिए शायद उसका अधिकांश समय अकेले ही कटता है, कौन बैठे उसके पास। अब वह किसी की मेहनत मजदूरी भी नहीं करती—उसके लायक बहुत है। अब वह फिर से अपनी गृहस्थी बनाने में जुट गई है। खाली समय में फेरी वालों से कपड़ा लेकर—बिहारी के लिए कमीज़ें, पाजामें, बनियान सीती रहती है। कभी मौज़ें और कभी स्वेटर बुनती रहती है। उसके जूते, छाता और—और बिस्तर—सब आए दिन झाड़ती-पोंछती रहती है, पर फिर आठ दिन ज्यों की त्यों धूल जम जाती है, उन सब चीजों पर। तब उसका धीरज छूटने लगता है—"कब तक आयेंगे वह, कब मेरे दिन फिरेंगे अब...?" और तब सहसा उसकी आँखें बरस पड़ती हैं।

इसी प्रकार करते करते पाँच वर्ष का लम्बा समय बीत गया। सोना के शरीर में अब रक्त माँस का नाम भी नहीं रहा। अब

उठना-बैठना भी दूभर होगया, चलना-फिरना तो असम्भव था ही।

पर आशा—आशा आज भी उसका आँचल मज़बूती से थामें थी। तभी तो उसने आज धीरे धीरे उठ कर सारा घर झाड़-बुहार डाला। नया घड़ा भर कर पलहँडो पर ढाँक कर रख दिया, चूल्हा पोता—और वर्तन माँज कर रख दिए, सब कपड़े धोकर सुखाए, और झाड़ कर विस्तर भी खाट पर विछा दिया। शरीर में शक्ति न सही, पर मन की शक्ति आज उसका खूब साथ दे रही थी। सोना ने सिर से नहाकर बालों में तेल डाला और कंघी करके माँग में सिंदूर भी भर लिया। माथे पर लाल बिंदी लगाकर कानों में जबके उतारे हुए झुमके भी पहन लिए, फिर साफ़ धोती और सलूका पहन कर उसने शीशे में अपना मुँह देखा—उसे लगा—जैसे यह सोना नहीं, सोना का कंकाल भूत बन कर बैठा है, सिर के बाल कहीं कहीं से पक चले हैं, मानो यह जीवन नहीं, मृत्यु की सूचना दे रहे हैं। फिर भी आज उसका चित्त प्रसन्न था, आज वह मंगल का व्रत रक्खे हुए थी। मुट्ठी भर बताशे खा कर उसने पानी पिया और खाट पर लेट कर हिसाब लगाने लगी—"आज से पूरे तीन महीने पहले उनका खत आया था—"छुट्टी मिली तो होली पर आऊँगा। परसों है होली?" सोना ने सेर भर टेसू के फूल और चार पैसे का गुलाल भी मँगा लिया था। गुड़ की भेली और मेवा भी मँगा लिया था—"हनुमान का रोट करेगी वह अब की बार।" और—और बाजरे के अन्दर से गुझियाँ-पापड़ी न जाने

क्या क्या करेगी...। यही सब सोचते २ उसकी आँखें लग गई। महीनों क्या ? वर्षों की उचटी हुई नींद ने उसे ऐसा आ घेरा जैसे साँप ही सूँघ गया हो। वह जैसे डूबी-सी जा रही थी, हाथ पैरों का दम-सा निकल गया था। तभी उसे ऐसा लगा मानों दरवाज़े पर किसी ने धक्का मारा। सोना ने उठ कर किवाड़ खोलने चाहे, पर उठा न गया। कोई दरवाज़ा पीटता ही रहा "खोलो, किवाड़ खोलो, अरे मैं आ गया ।" सोना को ऐसा लगा—युगों के बाद उसका नाम लेकर जैसे उसे कोई पुकार रहा है। पर उससे उत्तर न दिया गया।

धीरे धीरे धम धम की आवाज़ छत पर सुन पड़ी। फिर दरवाज़ा खुला और सोना को ऐसा लगा, मानों बहुत-सा सामान उसकी कोठरी में उठा उठा कर रक्खा जा रहा है। उसकी चारपाई हिली और किसी ने ठीक उसके मुँह पर अपना मुँह रखकर कहा—"उठो मैं आ गया, यह देखो तुम्हारे लिए इयरिंग, हार और कंगन लाया हूँ, सोने के यह सब, बम्बई से परसों ही खरीदे थे, यह साड़ी है कासनी रंग की—तुम्हारे मुँह पर बहुत खिलेगी। यह चाँदी की पायल हैं, खूब बजती हैं, और देखो तो, यह नया ट्रंक, कारपेट और शाल रक्खी है इसमें, इस डिब्बे में कई रंग की कांच की चूड़ियाँ हैं, चाँदी की डिब्रियों में सुनहरी बिंदी भरी है। यह बुनाई का ...न है और यह सलाईयाँ। उठो...सोना—देखो, यह बालों ... लगाने के क्लिप हैं, कंघी है, चाँदी की सुरमेदानी है और ...ह सब हैं, छपी हुई धोतियाँ—ब्लाऊज़ सिले-सिलाए।" परन्तु ...ोना जैसे बिल्कुल ही गहरे समुद्र में डूब गई थी, उसे यह

भी ज्ञान न था कि यह स्वप्न देख रही थी वह अथवा जागृत थी ? किंतु जो कुछ भी हो—उसके चेहरे पर अनिर्वचनीय आनन्द की मुसकान अठखेलियाँ कर रही थी और वह किसी अकथनीय स्वर्ग में जीवन और जवानी का सुख लूट रही थी।

धीरे धीरे दिन निकला—लोगों ने देखा गली में पड़ी हुई सीढ़ी लगाकर कोई बिहारी के घर में घुस गया है। दरवाज़ा खुला पड़ा है, इधर से ही चोर भागा होगा। न जाने किस बुरी आशंका को मनमें लेकर दो चार आदमी साहस करके अंदर घुसे। देखा और स्तब्ध रह गए, सोना की चारपाई के ऊपर झुका हुआ—ज़मीन में घुटने टेके हुए बिहारी बैठा है और बहुमूल्य गहने, कपड़े और चूड़ियाँ, बिंदी तथा अनेक चीजें खुली पड़ी हैं, किंतु किसी में न कुछ बोलने की हिम्मत थी और न कुछ छूने का ही साहस था।

चन्द्रकिरण सोनरिक्सा

# मर्द

सत्येन्द्र को तो सुनकर कुछ होश ही न रहा—मानों उसके सिर पर किसी ने मनों का पत्थर दे मारा, जिसकी चोट से बेहोशी आ गई हो; मानों किसी ने उसकी देह का सारा सत ही खींच लिया हो, जिससे कि कुछ भी बोध न होता हो,—पागल सा निरीह भाव से वह सबको ताक रहा था।

ताई ने तब रोते-रोते आसमान सिर पर रक्खा हुआ था। अम्मा और भाभी तो इस अधेड़ उम्र में भी ठोड़ी तक घूँघट काढ़े धरती पर बैठी विलाप कर रही थीं। बड़े भइया, ताऊ जी और लाला जी मरदानी बैठक में सिर थामे बैठे थे—'हाय भगवान् क्या हो गया !'

परसों ही तो सब अच्छे भले प्रयाग गये थे कुम्भ नहाने; केवल सत्येन्द्र रह गया था घर पर।

सत्येन्द्र आधुनिक विचारों का बी० ए० पास बेकार ग्रेजुएट है। गाँव में ज़मींदारी है और शहर में पिता और ताऊ की घी और कपड़ों की बड़ी बड़ी दुकानें; और अब इसी से नौकरी की चिन्ता त्यागकर सत्येन्द्र अपने दिन अख़बार पढ़ने, लेख लिखने और-टाउन हाल में अपने संगी साथियों को जमा करके लेक्चर फटकारने में ही बिता देता है। छः मास पहले ही तो

एक बार, केवल एक बार सत्येन्द्र कह पाया 'ताई !' और उसका गला बंद हो गया।

"बेटा ! मेरा लाल !" ताई ने उसे चिपटा लिया। उसके सफेद पड़े हुए मुख को ताक कर वह घबरा गई;—"छोटी बहू ! जल्दी पानी ला। मुनुवा को तो ग़श आ गया है।"

छोटी बहू यानी सत्येन्द्र की माँ जब पानी लाई, तब तक सत्येन्द्र कुछ सम्हल चुका था; उसने फटे-से स्वर में पूछा "अम्मा उसे क्या हुआ था ?"

"अरे भइया ! होना क्या था, उसे कोई मगरमच्छ पानी में खींच ले गया। लाश तक का पता न लगा—" और अम्मा ने रागनी अलापी—"अरे मेरी सोने सी बहू थी रे—दिया ले के ढूँढूँ तो भी वैसी न पाऊँगी !···मेरी लाड़ो के हाथों की मेंहदी भी अभी मैली न हुई थी—ई···ई—" भाभी भी रोने लगीं और श्यामा भी। दो मिनिट भी नहीं बीते थे कि सारा पड़ोस उनके यहाँ इकट्ठा हो गया। सभी रो रहे थे सुशीला को !—हाय बड़ी सुन्दर बहू थी। कैसी हँसमुख—।'

सत्येन्द्र ताई का सहारा थामे खड़ा था। निश्चेष्ट ! निस्पन्द !—मानो उसका संसार तो फूस के छप्पर-सा एक ही दियासलाई में राख हो गया—पसीने में वह नीचे से ऊपर तक तर हो गया !

'सुशीला अब नहीं है ! मर गई। उफ़ ! लाश तक न मिली, उस मरी के मुख में आग तक न दे सका ! उसे चिता भी नसीब

न हुई। ओ !"—दोनों हाथों से अपनी आँसुओं से नहाई हुई पलकों को मूँदकर वह दीवार के सहारे लग रहा।

ताई तब भी उसे थामे हुई थीं।

भीड़ चीर कर ताऊ उसके सामने आये—"बेटा!" बुझे हुए मन से उन्होंने कहा,—"हिम्मत करो, यूँ हौसला क्यों खोते हो ? ईश्वर को तुम्हारा 'जोड़ा' पसंद न था, सो बिछुड़ गया, चलो बाहर चलो—!"

सत्येन्द्र अब आँखें फाड़-फाड़ कर ताऊ के कथन को समझने की चेष्टा करने लगा।

"मुन्नू ! सत्येन्द्र !" पीछे से उसके लाला ने कहा—"बेटा सब्र करो !"

सत्येन्द्र पागल-सा उन्हे ताकने लगा।

धीरे-धीरे सब हुआ : उठावनी, दसवाँ. और लो आज तेरहवीं भी हो रही थी। लकीर तो पीटनी ही थी। भला बिरादरी यह सब कराये बिना क्यों छोड़ती ? सत्येन्द्र ने भी कलेजे पर पत्थर रखकर सब किया—सभी कुछ दान-दक्षिणा...! ब्राह्मणों को सात बर्तन, कपड़े, बिछुवे, पलंग, बिस्तर—सभी कुछ दिया।

दुनिया का काज थोड़े ही रुकता है। दिन भी कटते ही हैं, रोकर, हँसकर !

ब्राह्मण खा चुके थे। आँगन में बैठे हुए सत्येन्द्र के आत्मीय बड़े-बूढ़े, सभी उसे समझा रहे थे। वह चुप बैठा सुन रहा था। सुनना ही था।

एक बार, केवल एक बार सत्येन्द्र कह पाया 'ताई!' और उसका गला बंद हो गया।

"बेटा! मेरा लाल!" ताई ने उसे चिपटा लिया। उसके सफेद पड़े हुए मुख को ताक कर वह घबरा गई;—"छोटी बहू! जल्दी पानी ला। मुनुआ को तो ग़श आ गया है।"

छोटी बहू यानी सत्येन्द्र की माँ जब पानी लाईं, तब तक सत्येन्द्र कुछ सम्हल चुका था; उसने फटे-से स्वर में पूछा "अम्मा उसे क्या हुआ था?"

"अरे भइया! होना क्या था, उसे कोई मगरमच्छ पानी में खींच ले गया। लाश तक का पता न लगा—" और अम्मा ने रागनी अलापी—"अरे मेरी सोने सी बहू थी रे—दिया ले के हूँ हूँ तो भी वैसी न पाऊँगी!···मेरी लाड़ो के हाथों की मेंहदी भी अभी मैली न हुई थी—ई···ई—" भाभी भी रोने लगीं और श्यामा भी। दो मिनिट भी नहीं बीते थे कि सारा पड़ोस उनके यहाँ इकट्ठा हो गया। सभी रो रहे थे सुशीला को!—हाय बड़ी सुन्दर बहू थी। कैसी हँसमुख—।'

सत्येन्द्र ताई का सहारा थामे खड़ा था। निश्चेष्ट! निस्पन्द!—मानो उसका संसार तो फूस के छप्पर-सा एक ही दियासलाई में राख हो गया—पसीने में वह नीचे से ऊपर तक तर हो गया!

'सुशीला अब नहीं है! मर गई। उफ़! लाश तक न मिली, उस मरी के मुख में आग तक न दे सका! उसे चिता भी नसीब

न हुई। ओ !"—दोनों हाथों से अपनी आँसुओं से नहाई हुई पलकों को मूँदकर वह दीवार के सहारे लग रहा।

ताई तब भी उसे थामे हुई थीं।

भीड़ चीर कर ताऊ उसके सामने आये—"बेटा !" बुझे हुए मन से उन्होंने कहा,—"हिम्मत करो, यूँ हौसला क्यों खोते हो ? ईश्वर को तुम्हारा 'जोड़ा' पसंद न था, सो बिछुड़ गया, चलो बाहर चलो—!"

सत्येन्द्र अब आँखें फाड़-फाड़ कर ताऊ के कथन को समझने की चेष्टा करने लगा।

"मुन्नू ! सत्येन्द्र !" पीछे से उसके लाला ने कहा—"बेटा सब्र करो !"

सत्येन्द्र पागल-सा उन्हें ताकने लगा।

धीरे-धीरे सब हुआ: उठावनी, दसवाँ, और लो आज तेरहवीं भी हो रही थी। लकीर तो पीटनी ही थी। भला बिरादरी यह सब कराये बिना क्यों छोड़ती ? सत्येन्द्र ने भी कलेजे पर पत्थर रखकर सब किया—सभी कुछ दान-दक्षिणा"! ब्राह्मणों को सात बर्तन, कपड़े, बिछुवे, पलंग, बिस्तर—सभी कुछ दिया।

दुनिया का काज थोड़े ही रुकता है। दिन भी कटते ही हैं, रोकर, हँसकर !

ब्राह्मण खा चुके थे। आँगन में बैठे हुए सत्येन्द्र के आत्मीय बड़े-बूढ़े, सभी उसे समझा रहे थे। वह चुप बैठा सुन रहा था। सुनना ही था।

लाला रामानंद ने अपनी तोंद पर हाथ फेर कर धोती का फेंट सरकाते हुए कहा—"लाला रामसरन ! बस अब मुन्ना को ज्यादा फिक्र न करने देना। देखो लड़का दस ही दिन में सूख कर आधा हो गया ."

"भला यह भी कोई फ़िकर करने की बात है,"—हरिकृष्ण शुक्ल ने अपनी घुटी चाँद पर हाथ फेरते-फेरते कहा–',अरे कमबख्त की घोड़ी मरे, भाग्यवान् की लुगाई; एक गई दूसरी तैयार, और पहिली से चढ़ती हुई–!"'

सत्येन्द्र तिलमिला गया। ऐसी संवेदना उसे नहीं चाहिये। पर करे क्या ? सुननी ही पड़ती थी !

भगवानप्रसाद उनके दूर के सम्बन्धी होते थे; उनकी एक भतीजी थी, सत्रह वर्ष की। वर मिल नहीं रहा था। ऐसा स्वर्ण अवसर वे भला कैसे छोड़ते ? जल्दी से बोले—"सो तो है ही पण्डित जी ! जरा लाला रामसरन के इशारा करने भर की देर है, यहीं पर खड़े-खड़े 'टीका' चढ़ जाय मुन्ना का, और पहिली ही लगन में व्याह। कोई बात भी हो, क्यों लालाजी ?–"

लाला जी तब धीरे से बोले–"भाई मुझे तो कोई उज्र नहीं, पर मुन्ना राजी होगा भला ? और आजकल के लड़के माँ-बाप को समझते ही क्या हैं ?—उड़द पर सफेदी बराबर भी तो नहीं इस पहले व्याह में ही सतेन ने कितनी मीन-मेष निकाली थी !"

ताऊजी की इच्छा थी कि अभी लड़का रुकवा दिया जाये। उनके विचार में लड़के का रंज दूर करने का एकमात्र उपाय यही था; ताई ने भी उनसे रात यही कहा था।

वे बोले—"इस में हरज ही क्या है, क्यों भई मुन्नू ?"

सत्येन्द्र से अब और रहा ही नहीं गया। दाँतों से होंठ दबाकर अपना उच्छ्वास रोकते हुए कहा—"ताऊजी ! ऐसी बातें मुझसे न कहिये !"

लड़के के स्वर का रूखापन लक्ष्य करके ताऊजी और अनुरोध नहीं कर सके। कहने लगे—"सो कोई जल्दी थोड़े ही है बेटा, साल छः महीने बाद सही !"

उपस्थित जन एक-एक दो-दो करके उठने लगे। सत्येन्द्र द्वार तक उन्हें पहुँचाने आया, केवल शिष्टाचारवश। दूर से एक ताँगा आता दीख रहा था। मुड़ते हुए सत्येन्द्र ने देखा कि ताँगा उसके ही द्वार पर आकर रुक गया और उसमें से दो तीन खद्दरपोश अधेड़ से व्यक्ति उतरे और उनके पीछे पीछे घूँघट काढ़े हुए एक दुबली पतली युवती भी, साड़ी से अपना अंग अंग लपेटे हुए।

"लाला रामसरन मित्तल का मकान यही है न ?" उनमें से जो सबसे अधिक वयस्क था, उसने पूछा।

"जी हाँ। क्यों ?"—सत्येन्द्र ने अचकचा कर उत्तर दिया। ताँगे में से उतरती हुई युवती में सुशीला का सादृश्य पाकर वह उसे ही ताक रहा था। युवती लड़खड़ाते पाँवों से आगे बढ़ी और एक नज़र ऊँची कर देखते ही उसके पाँवों के पास गिर पड़ी !

और लिपट गई पैरों से, "हाय—स्वामी !"

सत्येन्द्र चौंक पड़ा।

"अरे सुशीला......तुम!"

  

दम भर में वहाँ सारा शहर उमड़ पड़ा, जाति, परजाति सभी आँगन ठसाठस भर गया और बाहर का चौक भी। सुशीला सिर झुकाये सत्येन्द्र के पाँवों के पास गठरी बनी हुई बैठी थी। और बैठी रही।

लालाजी, ताऊजी और बड़े भैया का मुँह सफ़ेद फ़क हो रहा था, काटो तो खून नहीं। और ताई, अम्मा व भाभी भी किवाड़ों की ओट किये सिसकियाँ ले रही थीं, जैसे सुशीला का मृत्यु-संवाद अभी-अभी मिल कर चुका हो।

उन प्रौढ़ सज्जन ने दम भर अपेक्षा करके फिर कहा—"आप ही बताइये लड़की का इसमें क्या दोष?...घूँघट के तूफ़ान में कुछ दीखता तो था ही नहीं, तिस पर वहाँ ग़ज़ब की भीड़। पैरों पर दृष्टि किये चली आ रही थी, सो भीड़ के रेले में बिछुड़ गई। ग़लती तो आप लोगों की है कि पहले तो युवतियों को ऐसे मेला में ले ही न जाना चाहिये, और यदि ले भी गये थे, तो कम से कम उनके मुँह से 'नक़ाब' तो उतरवा ही देना था..."

"अजी यह कहने की बात है,—"ताई जी ने अपनी पैंतालीस साल में तैयार की हुई लाज-शरम को जैसे पानी में बहाकर, भीतर से ही कहा,—"हमारी बड़ी बहू भी तो घूँघट काढ़े थी। वह क्यों न रह गई भीड़ में? अरे छरछंदी लुगाइयों के यही ढङ्ग होते हैं। पन्द्रह दिन बाहर मौज मारकर अब घर की सुध आई है। डूब के न मरा गया? क्या गङ्गा सूख गई थीं? यहाँ अपना काला मुँह दिखाने चली आई, वेश्या कहीं की..."

प्रौढ़ सज्जन ने दुखी होकर कहा—"बहिन जी, बस करो।

अब वह बेचारी तो वैसे ही मरी हुई है—चार दिन से पानी की बूँद भी नहीं उतरी है उसके गले से-लेकिन लालाजी"—उन्होंने लाला रामसरन की ओर मुड़कर कहा,—"ग़ज़ब का साहस किया साहब आपकी बहू ने! तिमंज़िले की छत से खिड़की और कार्निसों पर पाँव रखती उतर आई। इसी का दम था इतना—नहीं तो आसफ़अली और हरनारायण जैसे बदमाशों के चंगुल से निकलना—"

लालाजी ने भरे स्वर में कहा,—"साहस किया या कुछ भी किया, पर भाई साहब हमारे किस काम की रही यह अब?"

"और क्या?"—भीतर से ताई फिर बोलीं—"इसे क्या हम अपनी देहरी लाँघने देंगे? हमारे कुल की आब तो चली ही गई। अब क्या इसे घर में रख कर बिरादरी से बाहर होंगे?"—और सुशीला को वक्र दृष्टि से ताक कर उन्होंने फिर कहा—"अरे जब एक बार चली गई थी, तो फिर वहीं रह जाती। इतनी अक़्ल न आई के तुझ 'मुसलमानी' को अब घर में कौन रक्खेगा?"

अम्मा ने भी भिनभिना कर कहा—'हमने तो इसीलिए तुझ पै मिट्टी डाल दी थी; दसवाँ, तेरहवीं तक कर दिए थे। हमारे लेखे तो तू उसी दिन मर गई...!

चार घण्टे और इसी तरह के विवाद में बीत गये।

आखिर चिढ़कर उसी प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा,—"तो बोलिये इस लड़की का होगा क्या? क्या आप चाहते हैं कि यह फिर उसी आसफ़अली के अड्डे पर पहुँच जाय? या दालमंडी का कोठा आबाद करे? छी, शर्म कीजिये लालाजी, इसी कारण तो हमारा समाज रसातल को जा रहा है...!"

'क्या बतायें भाई'—ताऊजी ने कहा—"इसे घर में कैसे रक्खें? भगवती सीता को जब रामचन्द्र नहीं रख सके, तो

हम किस खेत की मूली हैं भला ! हमारे लिये ता यह मर चुकी— चाहे जहाँ जाय !'

"उठो बेटी !" उन प्रौढ़ सज्जन ने सुशीला से कहा—"तुम्हें विधवा आश्रम में ही पहुँचाना होगा। पति के होते भी आज तुम विधवा हो। तुम इनके लिए मर चुकीं और यह...!" आगे बोला नहीं गया उनसे; गला रुँध गया।

सुशीला अब सह नहीं पाई, हया-शरम लोक-लाज सभी छोड़ कर सत्येन्द्र से लिपट गई—"हाय अम्मा !" उसके मुँह से निकला।

सत्येन्द्र ने उसे अपने अंक में भर लिया, उसके आँसू भी कलेजा फाड़ कर बाहर आ रहे थे।

"अब तिरिया-चरित्तर दिखा रही है—' ताई यह सब निर्लज्जपना सह नहीं सकी--बाहर आ गई—"चल दफ़ा हो ! हमारे लिए तो तू उसी दिन मर गई। बेशर्म, बेहया......!"

"बेटी चलो"--खद्दरधारी ने दोहराया, "अब तो आश्रम के टुकड़ों पर ही तुम्हारा जीवन कटेगा।"

सुशीला पाँव न उठाती थी। पर प्रौढ़ ने हाथ पकड़ कर उठाना चाहा, तो सत्येन्द्र ने कहा--"रहने दीजिए। वह न न जावेगी।'

'ऐं'—सब चिहुँक पड़े—"यह क्या ?"

सत्येन्द्र कह रहा था—"जी हाँ, वह न जायगी ! सबने उसे छोड़ दिया, पर मैंने नहीं। वह मेरी पत्नी है......मेरी।"

कमला चौधरी

# टेक की रक्षा

दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए जीवन के हाहाकार से ब्राह्मणी की सहन-शक्ति परास्त हो गई। शीत की तीव्र प्रचण्डता और क्षुधा की लहकती ज्वाला से अपने बालकों को भस्मीभूत होते देख माता का हृदय विदीर्ण होने लगा। अपनी जीर्ण-शीर्ण फूस की झौंपड़ी में उसे शीघ्र ही प्रलय का दृश्य उपस्थित होने का आभास मिलने लगा।

दुधमुँहे गोद के बालक के लिए पेय पदार्थ का सर्वथा अभाव है। अपने सूखे स्तन पिला-पिला कर भले ही बालक के रुदन को भुलावा दे ले, पर उसके प्राणों को कब तक भुलावे में रख सकेगी!

अन्य चारों बालक-बालिकाओं को भी कब से अन्न के दर्शन नहीं हुए। शरीर पर शीत से रक्षा के लिए वस्त्र तो क्या, लाज ढकने का भी साधन नहीं है। स्वयं उसके शरीर पर लज्जा की रक्षा करने योग्य साबित धोती नहीं है। कितने ही दिनों से एक फटी धोती, मैली झीनी धोती में वह सिकुड़ी-सिकुड़ाई झोंपड़ी के भीतर ही अपने को छिपा कर लाज बचा रही है।

सरयू की स्वच्छ, सलिल-धारा समीप ही बह रही है, किन्तु लज्जा के कारण वह जल भरकर नहीं ला पाती।

बालक-बालिकायें मिट्टी के पुराने मैले घड़े लेकर शीत-पाले से ठिठुरते जल भरने जाते हैं। वह दृश्य किसी प्रकार ब्राह्मणी से देखा नहीं जाता है। वह बालकों को जल भर लाने को भेज देती है, और फिर हृदय की वेदना से तड़पती हुई पृथ्वी में आँखें गड़ाये बैठी रह जाती है।

रात्रि ने पृथ्वी को हिम-कण उपहार दिये हैं। और हेमन्त ऋतु के प्रातः को अपना पूर्ण रूप दिखाने का अवसर मिला है।

आज मातृ-वात्सल्य-सम्पन्न ब्राह्मणी की ममता की आँखें नीची कर लेने मात्र से छुटकारा नहीं मिल सका। दीनता देवी का नग्न नृत्य देखने चिन्ता देवी भी जा उपस्थित हुई और स्वयं भी कदाचित् अपनी सहचरी दीनता की सहायता हेतु प्रहार कर बैठीं। जिस दृश्य को देखने से ब्राह्मणी के हृदय के टुकड़े-से होने लगते हैं, पीड़ा हृदय को नोचने लगती है, उसी दृश्य को देखने के लिए वह विवश हो गई। शीत, ताप, लज्जा, दीनता, सबकी बात भूल कर वह चिन्ता में डूब गई। आशंका ने सहसा उसमें तड़ित-गति उत्पन्न कर दी। वह एकबारगी उठ कर खड़ी हो गई। भय से हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। काँपते शरीर, भयभीत मन और आकुल नेत्रों से वह झोंपड़ी के सरकण्डे किंचित हटा कर सरयू की जल-धारा की ओर जाते हुए अपने बच्चों को आँखें विस्फारित करके ताकने लगी।

दोनों बालिकायें, जिनकी वयस अभी सात और नौ वर्ष ही की है, काई से ढँके घड़े हाथ और कमर के सहारे बलपूर्वक दबाये शीत से काँपती चली जा रही हैं। उनके शरीर के ऊपरी

भाग में कपड़े का एक बालिश्त भर का टुकड़ा भी नहीं है। कमर में अवश्य पुरानी मैली फरिया-सी बँधी है। उसमें भी बीसियों खोंपें लटक रही हैं, जिनकी मरम्मत होना भी असम्भव है। उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं दोनों छोटे-छोटे बालक, जिनके समस्त शरीर पर वस्त्र के नाम को एक चीथड़ा भी नहीं है, कटि पर मैले काले धागों की करधनी-मात्र बँधी हैं। वे दोनों राह में पड़ी वृक्षों की पतली-पतली सूखी टहनियाँ उठा-उठा कर अपने नन्हे-नन्हे हाथों में एकत्रित कर रहे हैं। झोंपड़ी में वापस आकर वे माता के सम्मुख मानों बहुत बड़ी निधि रख कर कहेंगे—"ले माँ आग जला दे! हम तापेंगे!" इसी विचार से बेचारे अबोध बालक सन्तुष्ट मन से लकड़ियाँ बीनने में दत्तचित्त हैं। उन लोगों के कोमल पैर हिम-सदृश ठण्डी ओस से भीगे रेणु-कणों पर चलने के कारण फूल कर नीले पड़ गए हैं। उस पर मलय समीर के झकोरे उनके नंगे शरीर पर डंक से मार उठते हैं। शीतलता से ओत-प्रोत वायु का वह प्रबल प्रकोप सहन करने के लिए असहाय बालक दोनों कन्धे सिकोड़ कर, ठिठुर कर, किंचित् ठहर जाते हैं, और फिर चलने लगते हैं। मानों ब्राह्मणी के वे निरीह बालक बड़े पराक्रमी हैं, शूरवीर हैं, विजेता हैं, जिनसे युद्ध करने के लिये प्रकृति देवी विकट अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उपस्थित हैं। दूसरी ओर सील की दुर्गन्ध से भरी फूस की झौंपड़ी के भीतर वह अपनी अनेक शक्तियों को भेज कर बच्चों की दुखिया माता को परास्त करने को आतुर हैं। उन शक्तियों में मानों संघर्ष आरम्भ है। दीनता के जिस मर्मांतक

दृश्य को माता आँखें बन्द करके भुलाने की चेष्टा कर रही थी, उसी दृश्य को चिन्ता के प्रहार ने उसे देखने को विवश कर दिया है। चिन्ता के आघात से छटपटाती हुई, वह उस दृश्य की भयङ्करता को आँखें फाड़-फाड़ कर देख ही नहीं रही है, बल्कि आँखों की राह उस दृश्य के वीभत्स रस को पी रही है।

चिन्ता ने अपने अंकुश की नोक ब्राह्मणी के मस्तक में चुभो कर कहा—'बच्चे सरयू की वेगवती धारा से जल भरने जा रहे हैं। शीत के कारण उनकी शारीरिक-शक्ति हिम के समान जम गई है। हाथ-पैर निश्चेष्ट हो गये हैं। कहीं घड़े उनके हाथ से छूट न जायँ, और घड़ों को सँभालने की चेष्टा में बालिकायें वह न जायँ।'

इस कल्पना से विकल होकर ब्राह्मणी इस समय सब-कुछ भूलकर उसी चिन्ता में निमग्न है। उसके हृदय पर, सम्पूर्ण शरीर पर और आत्मा पर इस समय उसी आशंका का आतंक छा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भय के समावेश से झंकृत हो उठी हैं। मातृ-हृदय वेदना से अत्यन्त मर्माहत हो उठा है। किन्तु लज्जा देवी अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु उसे पूर्णतः डोलने नहीं दे रही हैं। वह केवल घबराई हुई धक् धक् करता हृदय लिये असहाय खड़ी दम भर रही है। उपायरहित होने के कारण असहायता, दीनता और करुणा की साक्षात् प्रतिमा-सी वह खड़ी है।

इस लज्जा पर भी उसे इस समय ग्लानि-सी हो रही है। मन कहता है कि इसकी उपेक्षा करके वह बाहर भाग कर अपने

बच्चों को लौटाकर स्वयं जल भर लाये। किन्तु साहस नहीं होता। फिर भी आशंका विकल किये जा रही है। विधना न करे, यदि उसकी कल्पना सत्य के रूप में परिणत हो गई, तो वह क्या करेगी? अवश्य ही लज्जा की उपेक्षा करके झोंपड़ी से भाग खड़ी होगी।

ब्राह्मणी ने इस आशंका को भुलाने के उपक्रम में एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर, आँखें बन्द कर लीं, दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा लिये, और प्रार्थना की—"भगवन्, मेरे बच्चों की रक्षा करो!"

आँखें खोल कर ब्राह्मणी ने देखा—बालक-बालिकायें निर्विघ्न यात्रा समाप्त कर झोंपड़ी की ओर लौट रहे हैं। हास्य की हल्की रेखा अधरों पर स्फुटित हुई, किन्तु तुरन्त ही विलीन हो गई। हृदय में सन्तोष का हल्का झोंका आया। किन्तु झोंका-मात्र था, शीघ्र ही अपना प्रभाव लेकर उड़ गया। बालक जल में गिरने से बच गये हैं और झोंपड़ी की ओर सुरक्षित लौटे आ रहे हैं, यह विचार उस वातावरण में ब्राह्मणी के लिये सन्तोष का साधन था, किन्तु चिंता ने फिर हल्का-सा प्रहार कर दिया। आशंका से ब्राह्मणी का हृदय बैठने-सा लगा—'कहीं मिट्टी के घड़े बालिकाओं के हाथ से गिरकर फूट न जायँ।"

उसकी उस दयनीय अवस्था में तो वे घड़े स्वर्ण-कलश से भी अधिक मूल्यवान् हैं। उसके लिये उन घड़ों को फिर प्राप्त कर लेना फ़िलहाल दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। कितने दिन हुए जब वह अपनी एक परिचित कुम्हारी को झरबेरी के खट्टे

दृश्य को माता आँखें बन्द करके भुलाने की चेष्टा कर रही थी, उसी दृश्य को चिन्ता के प्रहार ने उसे देखने को विवश कर दिया है। चिन्ता के आघात से छटपटाती हुई, वह उस दृश्य की भयङ्करता को आँखें फाड़-फाड़ कर देख ही नहीं रही है, बल्कि आँखों की राह उस दृश्य के वीभत्स रस को पी रही है।

चिन्ता ने अपने अंकुश की नोक ब्राह्मणी के मस्तक में चुभो कर कहा—'बच्चे सरयू की वेगवती धारा से जल भरने जा रहे हैं। शीत के कारण उनकी शारीरिक-शक्ति हिम के समान जम गई है। हाथ-पैर निश्चेष्ट हो गये हैं। कहीं घड़े उनके हाथ से छूट न जायँ, और घड़ों को सँभालने की चेष्टा में बालिकायें बह न जायँ।'

इस कल्पना से विकल होकर ब्राह्मणी इस समय सब-कुछ भूलकर उसी चिन्ता में निमग्न है। उसके हृदय पर, सम्पूर्ण शरीर पर और आत्मा पर इस समय उसी आशंका का आतंक छा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भय के समावेश से झंकृत हो उठी हैं। मातृ-हृदय वेदना से अत्यन्त मर्माहत हो उठा है। किन्तु लज्जा देवी अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु उसे पूर्णतः डोलने नहीं दे रही है। वह केवल घबराई हुई धक् धक् करता हृदय लिये असहाय खड़ी दम भर रही है। उपायरहित होने के कारण असहायता, दीनता और करुणा की साक्षात् प्रतिमा-सी वह खड़ी है।

इस लज्जा पर भी उसे इस समय ग्लानि-सी हो रही है। मन कहता है कि इसकी उपेक्षा करके वह बाहर भाग कर अपने

बच्चों को लौटाकर स्वयं जल भर लाये। किन्तु साहस नहीं होता। फिर भी आशंका विकल किये जा रही है। विधना न करे, यदि उसकी कल्पना सत्य के रूप में परिणत हो गई, तो वह क्या करेगी ? अवश्य ही लज्जा की उपेक्षा करके झोंपड़ी से भाग खड़ी होगी।

ब्राह्मणी ने इस आशंका को भुलाने के उपक्रम में एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर, आँखें बन्द कर लीं, दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा लिये, और प्रार्थना की—"भगवन्, मेरे बच्चों की रक्षा करो !"

आँखें खोल कर ब्राह्मणी ने देखा—बालक-बालिकायें निर्विघ्न यात्रा समाप्त कर झोंपड़ी की ओर लौट रहे हैं। हास्य की हल्की रेखा अधरों पर स्फुटित हुई, किन्तु तुरन्त ही विलीन हो गई। हृदय में सन्तोष का हल्का झोंका आया। किन्तु झोंका-मात्र था, शीघ्र ही अपना प्रभाव लेकर उड़ गया। बालक जल में गिरने से बच-गये हैं और झोंपड़ी की ओर सुरक्षित लौटे आ रहे हैं, यह विचार उस वातावरण में ब्राह्मणी के लिये सन्तोष का साधन था, किन्तु चिंता ने फिर हल्का-सा प्रहार कर दिया। आशंका से ब्राह्मणी का हृदय बैठने-सा लगा—'कहीं मिट्टी के घड़े बालिकाओं के हाथ से गिरकर फूट न जायँ।"

उसकी उस दयनीय अवस्था में तो वे घड़े स्वर्ण-कलश से भी अधिक मूल्यवान् हैं। उसके लिये उन घड़ों को फिर प्राप्त कर लेना फ़िलहाल दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। कितने दिन हुए जब वह अपनी एक परिचित कुम्हारी को झरवेरी के [illegible]

घेर देकर बदले में दो घड़े माँग लाई थी। अब तो वस्त्र के अभाव में लज्जावश वहाँ तक जाना भी सम्भव नहीं है। इस चिन्ता ने ब्राह्मणी को बहुत ही उद्विग्न कर दिया। इस समय उसकी दृष्टि में बालिकाओं के परिश्रम के कष्ट से भी अधिक घड़ों की रक्षा महत्त्वपूर्ण बन गई थी। यदि इस समय कोई भी बालिका घड़ा लिये गिर पड़े और घड़ा फूट जाय, तो माता को बालिका के गिरने से अधिक दुःख घड़ा फूटने का होगा। जिस बालिका के जल-मग्न हो जाने की चिन्ता में क्षण भर पहले वह पीड़ा से तिलमिला कर विचलित हो उठी थी, उसी को इस समय वह घड़ा फोड़ डालने के दण्ड-स्वरूप क्रुद्ध होकर एक थप्पड़ अवश्य मार बैठेगी।

जब बालक-बालिकायें निर्विघ्न यात्रा समाप्त करके झोंपड़ी के द्वार पर आ गये, तो लपक कर ब्राह्मणी ने घड़े उनके हाथ से लेकर यथास्थान ठीक तरह रख दिये, और एक दीर्घ निःश्वास लिया। किन्तु वह निःश्वास भी पूर्णतः सन्तोष का निःश्वास नहीं था। सुरक्षित जल से भरे घड़े पाकर भी विषाद उसके नेत्रों से दो अश्रु-कण टपका गया, जिन्हें बच्चों से छिपा कर फटी धोती के अंचल से पोंछ कर ब्राह्मणी ने उसका चिह्न मिटा दिया।

चिन्ता का अन्तिम प्रहार, और तज्जनित विषाद ब्राह्मणी के लिए बहुत ही तीखा हो उठा। फिर अनेक चिन्ताओं ने उसे घेर लिया।

बालकों को पिता के आने पर भोजन देने का ढाढ़स बँधाती

हुई, ब्राह्मणी आज अपनी दशा पर बहुत दुःखी होती हुई, मन-ही-मन घुटती-सी, जीविका-उपार्जन के साधन सोचने में निमग्न हो गई। कोई उपाय, कोई युक्ति न सूझ सकने के कारण उत्तेजित-सी होकर उसने निश्चय किया कि पति के आने पर आज वह उससे कोई उपाय निकाल कर अन्न-वस्त्र प्राप्त करने को कहेगी। कोई उपाय तो निकालना ही होगा। इस प्रकार जंगली फल-फूलों से कब तक निर्वाह हो सकता है? और वे भी तो पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होते। आये दिन उपवास करना पड़ता है। इस प्रकार तो निर्बल हो-होकर धीरे-धीरे सभी का प्राणान्त हो जायगा। भले ही लज्जा और मर्यादा को तिलाञ्जलि देना पड़े। माता अपनी आँखों के सम्मुख सन्तति को क्षुधाग्नि से झुलस-झुलस कर मरते कैसे देख सकेगी?

इस समय उसे यदि एक साबित धोती ही प्राप्त हो जाय, तो वह कपास एकत्रित करके किसी से चरखा माँग कर सूत कात ले, और जनेऊ बना कर पति को बेच लाने के लिए दे दे। धर्म की मर्यादा के पालन हेतु, अब तक उसने किसी की चाकरी और सेवा नहीं की है; किन्तु अब बच्चों की प्राण-रक्षा हेतु विवश होकर वह भी स्वीकार करेगी। दूसरों का अन्न कूटेगी, पीसेगी। किन्तु यह सब हो कैसे? इस समय तो घर से बाहर पैर रखने का साधन भी नहीं जुट रहा है।

चिन्तातुर होकर ब्राह्मणी बच्चों की ओर से मुख फेर कर फफक-फफक कर रोने लगी। बच्चे आग तापते हुए पिता के आने की बाट जोह रहे थे।

सहसा ब्राह्मणी के कानों ने भारी कोलाहल का आभास पाया। हृदय में कौतूहल लिये, कारण जानने के लिए, उसने फिर सरकण्डों और फूस के बीच के छिद्र से बाहर दृष्टि डाली। देखा—राज-प्रासाद के समीप वाले तट पर मनुष्यों की भारी भीड़ एकत्रित है। उन्हीं के कण्ठ-स्वर कोलाहल उत्पन्न कर रहे हैं।

सरयू-तट की सूखी रेणुका पर भाँति-भाँति की सामग्रियाँ बहुत बड़े परिमाण में एकत्रित की गई हैं। सभी प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ वहाँ लाई जा रही हैं। अन्न-वस्त्र, धन-धान्य, स्वर्ण-चाँदी, हीरे-जवाहरात तथा बहुमूल्य आभूषणों के वहाँ ढेर लगे हैं।

ब्राह्मणी लालायित नेत्रों से दूर तक दृष्टि दौड़ा कर भली भाँति उन वस्तुओं का अवलोकन करने की चेष्टा करने लगी। उसके मन ने जैसे आज ही जाना कि अयोध्या में धन-धान्य का अभाव नहीं है। उसके जीवन में ऐसी वस्तुएँ इतने बड़े परिमाण में देखने का यह पहला ही अवसर था। यह दृश्य उसके लिए सर्वथा नवीन था।

कौतूहल-निवारण की चेष्टा में ब्राह्मणी ने अपनी बड़ी कन्या मनस्विनी से कहा—"पुत्री, बाहर जाकर किसी दर्शक से पूछ कर शीघ्र आओ कि राजगृह की यह सम्पत्ति इस प्रकार सरयू के तीर पर क्यों लाई गई है।"

मनस्विनी तुरन्त ही अपने बहन-भाइयों के साथ बाहर भाग गई। और लौट कर जो संवाद सुन आई थी, वह अपने शब्दों में माता को सुनाने लगी—"माँ, महाराजा दशरथ ने

अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी को चौदह वर्ष का वनवास दिया है। रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीता के साथ आज ही वन-यात्रा करेंगे। राम, लक्ष्मण और सीता अपनी सब सम्पत्ति ऋषियों, ब्राह्मणों और दीन-दुखियों को दान कर रहे हैं। यह भारी भीड़ दानार्थियों की एकत्रित है।"

ब्राह्मणी के हृदय में लालसा का उद्वेग हिलोरें मारने लगा। अभावपूर्ति के लिए व्यग्र हो उठी। उसने आतुरता से कहा—"बच्चो, सब लोग जाओ, और शीघ्र ही अपने पिता को ढूँढ़ कर बुला लाओ। वह भी आकर राजकुमार रामचन्द्र से दान में ये वस्तुएँ प्राप्त करें, तो हमारे दुःख दूर हो जायँ।"

बच्चों के मुख में स्वयं ही दूर से खाद्य सामग्रियों को देख-देख कर पानी भर-भर आ रहा था। आँखें उसी ओर देखने को मचल रहीं थीं। माँ के मुख से ऐसी बात सुन कर वे प्रसन्नता से पिता को ढूँढने चले गये। किन्तु मनस्विनी कुछ चिन्ता में पड़ कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसे इस प्रकार खड़ी देख कर अधीर होकर, माता ने ताड़ना के शब्दों में कहा—'पृथ्वी की ओर क्या निहार रही है, दुष्टा? शीघ्र भाग कर जा। तेरे पिता समीप ही के किसी वन में फल-मूलों का अन्वेषण कर रहे होंगे। उन्हें शीघ्र बुला ला। तू अपने बहन-भाइयों में सबसे बड़ी है, किन्तु बुद्धि में सब से हीन जान पड़ती है।"

माता को कुपित होते देख कर डरते हुए पीड़ित वाणी में मनस्विनी ने कहा—"माँ, तुम तो हम लोगों को सदैव उपदेश देती हो कि भिक्षावृत्ति बहुत दूषित कर्म है, और क्षुधा से

दे देना उत्तम है, किन्तु किसी के सम्मुख हाथ फैलाना उचित नहीं है। पिता को कितनी बार मैंने कहते सुना है कि भगवान् ने मनुष्य को परिश्रम करने के लिए यथेष्ट शक्ति दी है। बिना परिश्रम के अन्न ग्रहण करना अखाद्य खाने के बराबर है। फिर तुम आज पिता को अन्न-वस्त्र माँगने के लिए क्यों भेजना चाहती हो, माँ ?"

बालिका की बात सुन कर ब्राह्मणी क्षण भर को स्तब्ध रह गई। मन-ही-मन वह अपनी भूल अनुभव करने लगी। किन्तु तुरन्त ही बुद्धि ने फिर दीनता के लगातार होने वाले प्रहारों का स्मरण कराया। ब्राह्मणी सावधान हो गई। उसने इस बार दुलार से कहा—"यह बात दूसरी है, पुत्री! भिक्षा में और सम्मानपूर्वक श्रेष्ठजनों के हाथ से धन लेने में बहुत अन्तर है। तेरे पिता का गर्ग-गोत्रिय वंश में जन्म हुआ है। ब्राह्मण सर्वथा दान लेने का अधिकारी है। तू शीघ्र ही पिता को बुला ला।"

वार्त्तालाप में सफलता प्राप्त करके भी ब्राह्मणी को लगा, जैसे मनस्विनी के साथ ही, बुद्धि की युक्ति-द्वारा, वह अपने हृदय को भी छल रही है। अब तक दान ग्रहण करना ही उन लोगों ने अपना सम्मान माना होता, तो क्या प्रजापालक राजा दशरथ के समृद्धिशाली राज्य में वे इस दीन अवस्था को प्राप्त होते ? कितनी ही बार तो उसने राजगृह में अनुष्ठान और दान-पुण्य होने की बात सुनी है, किन्तु इससे पूर्व कभी भी उसके मन में दान लेने की अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई थी।

होकर, मैं वन से लौट आया हूँ। मुझे सरयू का कुछ जल ही पान कराओ। कुछ स्वस्थ होकर फिर वन में जाकर फल-मूल लाने की चेष्टा करूँगा।"

ब्राह्मणी को इस समय पति के वचन अनावश्यक और व्यर्थ-से जान पड़े। रोग की बात असामयिक-सी लगी। रुग्णता की बात सुन कर मन में सेवा-भाव उत्पन्न नहीं हुआ, न उसे शीघ्र ही विश्राम कराने का उपक्रम करना ही आवश्यक प्रतीत हुआ। वह चाह रही थी कि किसी प्रकार पतिदेव अपनी वार्त्ता समाप्त करें, उनकी जिह्वा का क्रम रुके, तो वह अपना आग्रह प्रकट करके दीनता-निवारण के साधन का उल्लेख करे। उस समय उसका मन, प्राण तथा समस्त इन्द्रियाँ संकट से छुटकारा पाने को विकल हो उठी थीं। उनका हृदय दीनता के विकराल बाण सहते-सहते क्षत-विक्षत हो रहा था। क्षुधा से व्याकुल अबोध बच्चे की हृदयग्राही दशा के परिणाम की कल्पना से उसके धैर्य का अन्त हो गया था। सहन-शक्ति जैसे सदैव को उसके अन्तर से विदा हो चुकी थी।

पति के सिर से लकड़ियों का बोझ उतरवाते हुए, उसने व्यग्रता से कहा—"आप किंचित ढाढ़स रख कर सहन-शक्ति से काम लीजिये। भगवान् ने आज हम लोगों के क्लेश निवारण करने का विधान रचा है। वह देखिये, सरयू के तट पर राजकुमार रामचन्द्र बहुत बड़े परिमाण में सम्पत्ति दान कर रहे हैं। दानार्थियों का विशाल समूह वहाँ एकत्रित है। आप भी जाइये, और रामचन्द्रजी से अपना नाम, वंश तथा जीविका के अभाव

से परिवार की दुर्दशा का वर्णन करके यथेष्ट सम्पत्ति दान में पाइये, तो हम लोगों के कष्ट दूर हों और बच्चों की प्राण-रक्षा हो। फिर इस प्रकार नित्य आपको जंगली फल-मूलों के लिए भटकना नहीं पड़ेगा।"

हाथ का फाल और कुदाली एक ओर फेंक कर, ब्राह्मण त्रिजट धम से पृथ्वी पर गिर-सा पड़ा, और हाँफते हुए उसने फिर जल की ओर संकेत किया। जल पीकर भी जब त्रिजट कुछ सोच में डूबा हुआ निरुत्तर ही बैठा रहा, उसने जाने का उपक्रम नहीं किया, तो ब्राह्मणी उत्तेजित होकर दुःख से अकुला उठी। उसने तीव्र स्वर में कहा—"आप देर क्यों कर रहे हैं। देखिये न, श्रेष्ठ राजकुमारों और मनस्विनी सीता ने दान-सामग्रियों का वितरण करना आरम्भ कर दिया है! क्या जब सब वस्तुएँ समाप्त हो जायँगी, तब आप जायँगे? अपने शरीर को दृढ़तापूर्वक सँभाल कर साहस से काम लीजिये!"

सोच में डूबे हुए ब्राह्मण त्रिजट ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—"यह आज तुम्हारा कैसा आग्रह है, ब्राह्मणी? मेरा वहाँ जाना क्या तुम्हें उचित जान पड़ रहा है? अपने परिश्रम ही के बल पर जीवन-निर्वाह करना मेरा नियम रहा है। और तुम भी इसी विचार की समर्थक थीं। फिर आज यह कैसी बात कह रही हो?"

ब्राह्मणी प्राणपन से युक्तिपूर्वक त्रिजट के इस विचार को समय के विपरीत ठहराने की चेष्टा करने लगी। बोली—"वहाँ इस समय बड़े-बड़े श्रेष्ठ विद्वान्, ब्राह्मण और ऋषि-मुनि दान

ले रहे हैं। फिर आप जैसे दीन व्यक्ति का दान ग्रहण करने में अपमान क्या है ? इस दान में तो राज-धन है। स्वयं राजकुमार अपने हाथ से दान दे रहे हैं। प्रजा का पालन-पोषण करना राजा का धर्म है। राज-धन ब्राह्मण को ही नहीं सारी प्रजा के लिए ग्राह्य है। दान का लक्ष्य दीन-दुखियों और ब्राह्मणों को सुखी करना होता है। राजा स्वयं ही जब प्रजा के क्लेश-निवारण के उपाय में संलग्न हो, और प्रजा अभिमानवश उसे अपनी दशा का आभास ही न होने दे, तो यह प्रजा की बुद्धिहीनता और राजा के लिए निन्दा की बात है। अतः आप सारा संकोच त्याग कर तुरन्त ही जाइये, और रामचन्द्र से अपनी दीनता का वर्णन कीजिये।

"अपने परिश्रम से जो कुछ प्राप्त हो, उसी पर सन्तोष करना मनुष्य-स्वभाव का उत्तम लक्षण है, किन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में जब खान-पान के अभाव से निर्बोध बच्चे घुल रहे हों, तो उस समय भी अपनी टेक लेकर निरुपाय बैठे रहना श्रेष्ठता नहीं कायरता है, आलस्य है। अन्न-वस्त्र-प्राप्ति का साधन सम्मुख उपस्थित होने पर भी उसकी उपेक्षा करके बच्चों को उपवास कराना कहाँ का न्याय है, स्वामी ?

"उपयुक्त खाद्य-सामग्री न मिलने के कारण इनके शरीर सूख सूख कर पिंजर-मात्र रह गए हैं। नित्य-प्रति अबोध बच्चों को क्षुधा में विकल देख कर भी अपनी टेक के कारण चुपचाप बैठे रहना क्या शोभा देता है ? इस समय तो आपके लिए मान-सम्मान, धर्म-कर्म, कर्तव्य, सब कुछ क्षुधा से व्याकुल अपने

बच्चों को भोजन दिलाना है। देखिये, गोद का बालक निर्बलता के कारण ज़ोर से रोने की भी शक्ति को खो चुका है। इसके होंठ सूख रहे हैं। यदि तुरन्त ही इसके लिए दूध का कुछ उपाय न हुआ, तो इसकी प्राण-रक्षा कैसे होगी, स्वामी? आप पातक के भागी होंगे, और संसार में भी निन्दा के पात्र बनेंगे।"

यह सब कह कर ब्राह्मणी मार्मिक स्वर में विलाप करने लगी। ब्राह्मण त्रिजट का हृदय वेदना से विकल होकर खण्ड-खण्ड-सा होने लगा। व्याकुल स्वर में उसने कहा—"चुप रहो, ब्राह्मणी! मैं तुरन्त ही जाता हूँ। तुम सत्य ही कहती हो। इस समय बच्चों की प्राण-रक्षा करना मेरा प्रमुख कर्तव्य है। भगवान् ने शायद मेरा अभिमान चूर्ण करने के लिए ही मुझे ऐसे घोर संकट में डाला है।"

विकल हृदय से एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर, त्रिजट जाने का उपक्रम करने लगा। किन्तु सहसा अपने शरीर की ओर दृष्टि डाल कर रुक कर खड़ा हो गया, और अपनी असहायता पर बहुत ही विकल होकर कहने लगा—इस अवस्था में रामचन्द्रजी के सम्मुख इतने मनुष्यों के बीच में कैसे जाने का साहस करूँ ब्राह्मणी? अपनी इस दशा पर मुझे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हो रही है। वृक्ष की छाल की लँगोटी मात्र बाँधे देखकर मुझे ब्राह्मण कौन समझेगा? जंगली कोलभील आदि समझ कर राजकर्मचारी मेरा अपमान करेंगे। और मुझे उनके समीप जाने न देंगे।"

निरुपाय-सा होकर त्रिजट माथा पकड़ कर स्तब्ध खड़ा रह गया। ब्राह्मणी ने तुरन्त ही साहस से काम लिया। मातृ-हृदय ने, जो इस समय सन्तति की जीवन-रक्षा के सम्मुख सब-कुछ अर्पण करने को विवश था, एक उपाय खोज लिया। पति को धैर्य बँधाने के लिए मृदु शब्दों में उसने कहा—"ब्राह्मण के लिए माथे पर चन्दन का तिलक और गले में यज्ञोपवीत भर यथेष्ट है। आपके पूजा वाले मृग-चर्म को लपेट कर मैं अपनी धोती आपको दिये देती हूँ। इसे लपेट लीजिये। किंचित धैर्य धारण करके साहस पूर्वक आप रामचन्द्र जी के समीप जायँ। वह ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और आदर-सम्मान करने के लिए विख्यात हैं। वह तुरन्त ही आप के कष्ट का सदैव के लिए निवारण कर देंगे।"

त्रिजट के चले जाने पर ब्राह्मणी ने दोनों हाथ ऊपर उठा कर मन-ही-मन कहा—'देव, दीन की लाज रखना न रखना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। इस समय तो मेरे पति को वहाँ तक पहुँचने की दृढ़ता ही प्रदान करो! भगवान, दीनता से युद्ध करने का अब हममें साहस नहीं है। हमारा अपराध क्षमा करो।'

दीन त्रिजट फटी धोती को बार-बार अपने हाथ सँभालता हुआ, लज्जा से मस्तक नीचे झुकाये हुए, किसी प्रकार रामचन्द्र जी के सम्मुख उपस्थित हुआ, और सकुचाते हुए हाथ जोड़ कर अस्फुट वाणी में रामचन्द्रजी से कहने लगा—'हे नर-श्रेष्ठ राजकुमार रामचन्द्र! मैं समीप ही सरयू के किनारे फूस की एक झोंपड़ी में बसने वाला दीन ब्राह्मण हूँ। मेरे स्त्री है, और

अनेक पुत्र-पुत्रियाँ हैं। जीविका के अभाव के कारण मैं जंगली फल-मूलों पर ही अपने परिवार का निर्वाह कर रहा हूँ। परिश्रम और उपवास करते-करते मैं अत्यन्त निर्बल हो गया हूँ। देखिये, मेरे शरीर का रंग पीला पड़ गया है। मेरे बच्चे अन्न-वस्त्र के अभाव से क्षुधा और शीत से बहुत ही व्याकुल होकर रो रहे हैं! मैं क्षुधाग्नि से उनकी रक्षा करने में बिलकुल असमर्थ हूँ। आप···"

दीन त्रिजट अपना कथन भी पूर्ण न कर सका। बीच ही में नरश्रेष्ठ रामचन्द्र खिलखिला कर जोर से हँस पड़े। रामचन्द्रजी की इस हँसी से वहाँ उपस्थित सारा जनसमुदाय रामचन्द्र जी का मुख देखने लगा और दीन-हीन, असहाय ब्राह्मण त्रिजट अपमान और उपेक्षा अनुभव करके बहुत ही लज्जित और रुआँसा हो गया। उसके मन को लगा कि यदि आज उसे इस प्रकार विवश होकर रामचन्द्र जी से दान माँगने के लिए न आना पड़ता, तो क्यों उसका आत्म-सम्मान नष्ट होता, क्यों उसकी दीन दशा, उसका वह लज्जा-भाव रामचन्द्र जी की आँखों में हास्य-जनक बन उठता! अपमान की लज्जा ने उसकी मनोदशा को असहायता की चरम-सीमा पर पहुँचा दिया। किन्तु इस समय अपमान के शोक ने उसके मन में क्रोध उत्पन्न नहीं किया, बल्कि ग्लानि से उसका हृदय फटने लगा, आँखें और भी पृथ्वी में गड़ गईं, और मन में कहने लगा—'रामचन्द्र जी ही की भाँति यहाँ एकत्रित सम्पूर्ण जनसमुदाय मुझ पर हँस रहा है। कदाचित् यहाँ उपस्थित सभी मनुष्य और स्वयं

रामचन्द्र जी मुझे बावला और अत्यन्त हीन मनोवृत्ति का भिखारी समझ रहे हैं। मानो निर्धनता के दोष से उत्पन्न हुए सारे ही अवगुणों का मैं समूह हूँ। वे मुझे अत्यन्त कायर, आलसी और असत्यभाषी समझ रहे हैं। उनकी आँखों में मैं आडम्बरधारी, लोभी और दुराचारी भिखारी बन गया हूँ। इस कारण दान को ग्रहण करने का पात्र न समझ कर ही रामचन्द्रजी मुझ पर हँस पड़े हैं, नहीं तो श्रद्धापूर्वक तुरन्त ही वह मुझे दान देने को उत्सुक हो उठते। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी तो विप्रों का मान-सम्मान और मर्यादा रखने में विख्यात हैं। तभी यहाँ उपस्थित तेजस्वी ब्राह्मणगण भी ब्रह्मत्व का अपमान होते देखकर भी क्रोधित न होकर निःशब्द खड़े हैं।"

इन विचारों से अत्यन्त मर्माहत होकर ब्राह्मण त्रिजट मूर्छित-सा होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। उसी समय रामचन्द्रजी ने त्रिजट का हाथ पकड़ कर मुस्कराते हुए सारे जन-समुदाय को आश्चर्य में डालने वाली बात कही—"हे पराक्रमी द्विजवर त्रिजट! ब्रह्मत्व के नाते तुम अपना शौर्य छिपा रहे हो। किन्तु ब्राह्मण-श्रेष्ठ, मेरी इच्छा तुम्हारे बाहुबल का दिग्दर्शन करने की है।"

त्रिजट सहसा चौंक उठा। लज्जा के वशीभूत हो, जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि उसने रामचन्द्र जी के मुख पर डाली। रामचन्द्र जी इस समय भी मुस्करा रहे थे, किन्तु त्रिजट को उस मुस्कान में अपमान और परिहास के भाव दृष्टिगोचर नहीं हुए, बल्कि उस मुस्कान में एक रहस्य का आभास प्रतीत हुआ। अतः उसमें

किंचित् शक्ति और साहस का संचार होकर लज्जा तथा ग्लानि का वेग शिथिल होने लगा।

समीप खड़े एक व्यक्ति के हाथ से गौ घेरने का डण्डा छीनकर रामचन्द्र जी ने त्रिजट के हाथ में देकर कहा—"अपनी जिन भुजाओं को तुम बहुत ही निर्बल, शक्तिहीन बता रहे हो, उन्हीं से इस डण्डे को शक्ति भर दूर फेंककर बाहुबल की परीक्षा तो करो। देखो, यहाँ से सरयू के उस पार तक गौओं के समूह के समूह खड़े हैं। मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारी फेंकी लकड़ी जिस हद तक जाकर गिरेगी, उसकी समस्त गौओं पर तुम्हारा अधिकार होगा।"

रामचन्द्र जी के इन प्रोत्साहनयुक्त शब्दों से त्रिजट में पराक्रम उत्पन्न हो गया। उसे जान पड़ा कि उसकी बाहुओं में कोई दिव्य शक्ति छिपी है, जिसका आभास पाकर अन्तर्यामी रामचन्द्रजी मुस्करा उठे थे और अब उसे उस शक्ति का स्मरण कराके प्रोत्साहन दे रहे रहे हैं। इस विचार ने उसके गिरते हुए रुग्ण शरीर में अद्भुत उत्तेजना का संचार किया। एक बलिष्ठ योद्धा की भाँति त्रिजट ने अपनी उस फटी धोती को समेट कर कटि पर कस लिया, और रंग-बिरंगे झूलों और चाँदी की हमेलों से सुसज्जित स्वर्ण-मण्डित सींगों वाली हृदय-पुष्ट गौओं पर एक दृष्टि डालकर, परम साहस और विश्वास के साथ बलपूर्वक अपने हाथ के डंडे को द्रुतगामी गति से फेंका।

दैवयोग से त्रिजट की फेंकी लकड़ी सरयू की विशाल

धार के उस पार गौओं की एक बड़ी गोष्ठी के बीच में खड़े बैल के समीप जा कर गिरी।

सारी भीड़ हर्ष-ध्वनि कर उठी। रामचन्द्रजी ने त्रिजट को हृदय से लगा कर कहा—"ब्रह्मदेव त्रिजट, तुमने अपने बाहुबल से असंख्य गौओं की बाजी जीत ली है। तुम्हें बधाई है!"

सोलह सहस्र गायें पाकर ब्राह्मणी और उनके बच्चों के हर्ष का पारावार नहीं रहा। और त्रिजट का हृदय अपनी टेक की रक्षा करने वाले, स्वाभिमान की रक्षा करने वाले, और दीनता के प्रलयंकारी प्रहार से परिवार का उद्धार करने वाले, महाराज रामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण हो उठा।

कमला त्रिवेणीशंकर

# क्रान्तिकारी

नींद खुलते ही मातृ-वन्दना की सुमधुर ध्वनि सुन पड़ी। रेलिंग पर झुक कर देखा, याद आया आज 'प्रभात फेरी' का दिन है। युवकों की टोली उल्लास के साथ गाती हुई आगे बढ़ गई। हृदय के कोने में एक सोई हुई मधुर-सी स्मृति धीरे-धीरे सजग होने लगी...

...रोज की तरह सब दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर जब सोने के लिए कमरे में आई; तब घड़ी में १० बज चुके थे। अभी तक 'वे' लौटे न थे और लौटने की कोई सम्भावना भी न थी। उन दिनों रात भर की डयूटी प्रायः उन्हें रोज ही देनी पड़ती थी। दिन में भी कभी आ जाते, कभी किसी को भेजकर खाना मँगवा लेते। पर उस दिन शाम को उन्होंने कहलाया था कि एक घंटे के लिए घर पर आऊँगा और खाना वहीं पर खाऊँगा। देर तक बच्चे पिता की प्रतीक्षा करते रहे, फिर सो गये।

पुस्तक के दो तीन पन्ने उल्टे, पर तबियत नहीं लगी, उसे रख ग्रामोफोन निकाल लाई। पर छोटा बच्चा मुश्किल से सोता है, उसके जग जाने के भय से बजाने का साहस न हुआ। दो मिनट तक खड़ी सोचती रही। फिर सूत-सितारे इकट्ठे कर सोचा 'राखी' बना लूँ। यद्यपि भैया तक यह पहुंच सकेगी इसकी अधिक सम्भावना न थी। क्योंकि अगस्त का देशव्यापी

आन्दोलन आरम्भ हो चुका था, और यह भी निश्चित था कि भैया या तो गिरफ्तार हो चुके होंगे, या फरार होंगे ? यह जानते हुए भी कि इस पुनीत दिन की प्रतीक्षा में कितनी उत्कंठा से किया करती हूँ...वे मेरे घर इस बार नहीं आयेंगे...? मैं भी न जा सकूँगी, क्योंकि दो दिन पहले जब मैंने उन्हें रक्षाबन्धन की याद दिलाते हुए भैया के यहाँ जाने को कहा था तब वे कुछ रुष्ट होकर बोले थे—"तुम्हें यह प्रस्ताव रखने से पहले ही विचार कर लेना चाहिए था कि क्या यह सम्भव है ? कुछ मेरी पद-मर्यादा का भी तो ध्यान रखा करो... ।

...फिर भी सोचा...इसमें अपनी शुभ कामनायें गूँथकर भाभी के पास भेज दूँगी, वे भैया के चित्र पर मेरी यह स्नेह की भेंट चढ़ा देंगी...इतने ही में अर्दली ने आकर कहा—"साहब ने खाना वहीं मँगाया है और वे आ न सकेंगे कहलाया है बच्चों के साथ खूब सतर्क होकर रहेंगीं ।"

झुँझलाहट हुई, पर उतर कर मैंने टिफिन कैरियर उसे देकर दरवाजा अच्छी तरह बन्द कर लिया ।

जरा देर पहले की बूँदा बाँदी अब मूसला धार हो कर बरस रही थी, कभी कभी भय से कलेजा दहल उठता था ? दिन भी ऐसे ही थे, रोज ही खबरें मिलती रहतीं—आज तार काटे गये, कल स्टेशन जला दिया गया, रात किसी मजिस्ट्रेट के बंगले में यूनिवर्सिटी के छात्रों ने आग लगा दी...किसी दारोगा का घर फूँक दिया गया ? स्त्री बच्चे तक जल मरे...ऐसे आतंक

भरे दिन थे। वे बच्चों को लेकर अकेले रहने का साहस न था, किन्तु आन्दोलन आकस्मिक था, वर्षों बाद क्रांति की यह चिनगारी चिटकी थी, और देश का कोना कोना मानो जाग्रत होकर उसमें स्वतन्त्रता का प्रकाश देखने के लिए खुला पड़ रहा था।

बादलों की घरघराहट ऐसी लगती मानो बहुत से सिपाही बंगले में घुस आये हैं। और वे कह रहे हैं—कहाँ हैं देश-द्रोहियों के बच्चे उन्हें हम पहले से ही साफ कर स्वतन्त्रता का भविष्य निरापद कर दें।

भयावनी सावन की रात बारिश थमने का नाम नहीं लेती थी। सहसा किसी ने जंजीर खड़खड़ाकर मुझे चौंका दिया ? ऊपर खिड़की से झुक कर पूछा—कौन...है ?

बारीक आवाज में कुछ अस्पष्ट-सा स्वर सुन पड़ा—दरवाजा खोलो...खोलो...भैया ? शायद भैया की आवाज है और इस भयानक बारिश में...मैं दौड़ी और एक क्षण भी न रुक कर मैंने दरवाजा खोल दिया...पानी से लतपथ जो कि शायद दरवाजे से ही चिपटे हुए थे, गिरते-गिरते बचे..... मैंने स्विच दबा कर रोशनी की...दृष्टि पड़ते ही मैं चौंकी। एक हल्की सी चीख मेरे मुँह से निकल गई...ओह...वह भैया न थे।

वह २२-२४ वर्ष का सुन्दर नवयुवक था, दुबला, पर स्वस्थ कुछ उतरा-सा मुँह, घबराया हुआ-सा बोला—ओह, आप — राइये नहीं दीदी, कितना पानी है सड़कों पर। सड़कों घुटनों से आ लगा है। आगे चलना कठिन हो गया, भी तो नहीं सूझता...?

'पर...पर तुम कौन हो'—सहमते हुए मैंने पूछा।

युवक मुस्करा उठा और बोला—"मैं, मैं कौन हूँ ? मैंने आपको दीदी कहा है, फिर आप ही क्यों न समझ लें कि मैं कौन हूँ ? और वह अपनी धोती निचोड़ने लगा।

मेरी घबराहट कुछ कम हुई। युवक साधारण था, उसके चेहरे पर सरलता और कुछ कुछ परेशानी सी थी, फिर भी उसके ओठों पर हल्की हल्की सी मुस्कान थी। उसे कपड़े निचोड़ते देखकर मैं बोली—कहाँ घर है तुम्हारा ? अरे यह जाकेट उतार ही दो न कितनी ठंडक है। ठहरो मैं कपड़े लिए आती हूँ।

मैं अपने पति की एक चादर और धोती लेकर वापस आई। उसने उलट-पुलट कर देखा—और एक ओर अलग रखते हुए बोला—यह नहीं दीदी यह मेरे काम के नहीं; मैं अपने ही कपड़े सुखा कर पहन लूँगा।

मैंने आश्चर्य से पूछा—इन कपड़ों को न पहन कर अपने कपड़े कैसे सुखाओगे।

उसने जाकेट उतार दी और बोला—ये कपड़े तो विलायती हैं ?

अच्छा? मैं लौटकर दूसरी बार दो मोटी चादरें निकाल लाई, वे भी खद्दर की तो न थीं, लेकिन स्वदेशी मिल की सूती चादरें थीं, उसने उसे ले लिया। और जरा देर बाद जब मैं अँगीठी की आग लिए वापस लौटी तो वह कपड़े बदल कर खिड़की के पास खड़ा बाहर कुछ देख रहा था।

आग उसके पास रखते हुए मैंने पूछा—"तुम कौन हो जी,

यह तो तुमने बतलाया ही नहीं, क्या नाम है तुम्हारा ?

वह मुस्करा अँगोठी पर तनिक झुककर बोला—नाम...नाम

दिनेशचन्द्र है, सुना है न कभी ?

"दिनेशचन्द्र...तो तुम दिनेश हो, क्रान्तिकारी दिनेश...सच कहते हो, क्या तुम वही हो ?'

उसने मेरी घबराहट देखी और उसी तरह मुस्करा कर बोला हाँ दीदी, सच ही तो कह रहा हूँ......।...मैं ही हूँ पर.....!

मेरी दृढ़ता साथ छोड़ने लगी... उफ बिना सोचे समझे मैं यह क्या कर बैठी, मैंने उस भयानक अपराधी को आश्रय दिया है जिस के लिये कई महीने पहिले से ही सरकार घोषणा कर चुकी है, जिसके जीवित या कटे हुए सिर का मूल्य है दस हजार मुद्राएँ......।

मैंने अपने को संयत करके कहा तुम जानते हो यह घर किसका है ? उस ने लापरवाही से कहा—नहीं कितना अंधेरा है बाहर ?

"अंधेरा है बाहर हाँ यह तार काटने का काम तो तुम्हारी ही श्रेणी के लोग कर रहे हैं लेकिन मैं कुछ ठिठकी जिसने दो बार दीदी कह कर मेरे निकट अपने लिये एक महत्वपूर्ण स्थान की नींव डालनी चाही, उसके प्रति सहसा विरक्ति का भाव प्रकट करने में मुझे कुछ संकोच सा हुआ फिर भी उसे सचेत करने के लिये मैं स्वर को कोमल बना कर बोली—'यह बंगला जंट साहिब का है।'

"जंट साहिब का ? और आप उनकी

लेकिन इस अंधेरी रात में मैं जाऊँ भी तो

तो मुझे आश्रय दीजिए ही।

मैंने मुस्करा कर कहा—"पर स्थान तुम्हारे लिये निरापद नहीं है? "क्या कहती हैं आप? नारी-छाया पुरुष के लिये सदा निरापद है। वह मुस्करा उठा बालकों की तरह।

संभव है, पर प्रश्न नारी-पुरुष का नहीं, एक विद्रोही क्रांतिकारी और दूसरा वह खिल कर हँसा बोला—पर दीदी मैंने जिसका आश्रय लिया है, उसके प्रति कम से कम मैं निश्चिन्त हूँ......वह कोई भी क्यों नहीं......पर वह नारी का हृदय रखती है, बहन का स्नेहपूर्ण हृदय उसके शरीर में धड़क रहा है, माँ की ममता उसके चारों ओर लिपटी हुए है......उसके मुख पर परम विश्वास की दीप्ति झलकने लगी।

मैंने हँस कर कहा—"यदि वे आ गए तो......?

वह कुछ सोच में पड़ गया—मैंने कहा—मैं भी कैसी हूँ बातों में लग गई, तुम्हें खाने तक को न पूछा—तुम्हें भूख लगी होगी।

"हाँ पर नहीं, मुझे भूखे रहने की आदत पड़ गई है, मैं तो दो तीन दिन बड़े मजे से पानी पर ही काट सकता हूँ।

मैं उठ गई—बच्चों का बचा हुआ दूध पूरियाँ अचार और शाक उसे खाने के लिये देकर मैंने उसके सोने के लिए निरापद स्थान में व्यवस्था कर दी।

खाना खाने के बाद वह बड़ी देर तक बैठा मुझसे बातें करता रहा, मैंने जितने भी तर्क किए वह बड़ी ही सरलतापूर्वक मीठे शब्दों में उसका खंडन करता गया। मेरी "राखी" पूरी हो गई

ी, मैंने उठते हुए कहा—अब तुम भी जा कर सो रहो।

वह आज्ञाकारी बालक सा उठ गया और पलंग पर सोए हुए रे दोनों बच्चों की ओर देखकर बोला–इन अबोध बच्चों की भविष्य की कल्पना क्या कभी आप करती हैं।

"करती हूँ......माँ बालक के जन्म के साथ ही कल्पनाओं का जाल बुनने लगती है दिनेश !

"पर किसी रूप में करती हो दीदी, ये गुलामी की शृंखला तोड़ेंगे या पहिनेंगे, यह युग पर निर्भर है।

"आप शायद इस क्रांतियुग पर विश्वास नहीं करतीं, क्या आज की क्रान्ति हमारे भविष्य की सफलता की सूचक नहीं है ?

"हो सकता है पर अभी उसमें देर है। जिस दिन तुम जैसे दिनेश घर घर से निकलेंगे उस दिन अवश्य विश्वास करूँगी।

"उसमें देर नहीं है दीदी........वह सोने चला गया। मैं भी बच्चे के बगल में लेट रही।

कुछ खटापट सी हुई मोटर की पहचानी हुई हार्न सुन पड़ी। नींद टूट गई। घड़ी की ओर देखा ४ बज कर ?० मिनट हुए थे, बाहर की अर्गला जोरों से झनझना उठी।

सहमते हुए ड्राइवर से बोले—"अब तुम जाकर आराम कर सकते हो, ठीक ७ बजे मैं फिर ड्यूटी पर जाऊँगा मोटर तैयार रखना।

मेरे साथ साथ वे ऊपर आये—कपड़े बदल कर पलंग पर उँठगते हुए बोले—कुमुद रानी, तुम कुछ परेशान-सी हो : क्या बात है ?

मैंने अपने को संभाला—जी, मैं......मैं......तो बिल्कुल ठीक हूँ। आप शायद बहुत थक गये हैं। आँखें लाल हो रही हैं, शायद जरा भी आँखें नहीं लगने पाईं।

"नहीं सारी रात दौड़ते-दौड़ते बीती। ११ बजे खाना खाने बैठा तभी अचानक खबर मिली, कुछ विद्रोही फरार व्यक्ति दो तीन मील दूर किसी गाँव में छिपे हैं। वहाँ पहुँचने पर पता लगा कि वह सब के सब वहाँ से गायब हो गये। आस पास खोजते खोजते लगभग २॥ बज गये। कैम्प पर आया तो मालूम हुआ। आज के फरार व्यक्तियों में एक भयानक क्राँतिकारी भी है......नाम शायद सुना हो दिनेश......।

"दिनेश ? जी..... दिनेश—मेरे मुँह से अचानक निकल गया।

पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया—कहते गये, हाँ, उसी की बात कह रहा हूँ, महीनों से पुलिस उसके पीछे पड़ी है। और वह हमेशा पुलिस वालों की आँखों में धूल झोंक कर निकल जाता है। उसी को खोजते खोजते मैं भी परेशान हो गया, वर्षा भी आज उसका ही साथ दे रही है।

मेरा जी भीतर ही भीतर धकधका उठा ?

वे फिर बोले शहर के जिन अड्डों पर उसके छिपने की संभावना थी, उन्हें छान डाला, पर कहीं पता नहीं लगा। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तो अभी तक नहीं लौटे......पर शायद कैम्प पहुँचने पर कुछ देर बाद वह फोन करें। मुझे फौरन जगा देना—

"अच्छी बात है आप सो रहें। मैंने उनके ऊपर चादर डाल

कर मच्छरदानी गिरा दी।

नींद आने में दस मिनट से अधिक नहीं लगे। जिसको ति... रात भर वह वर्षा में मारे मारे फिरे वह मेरे ही आश्रय सुख की नींद सो रहा है।

मैं दबे पाँव नीचे आई—वह भी जाग गया था, मुझे देखकर उसी सरलता से बोला—"अब जा रहा हूँ ? तुम्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ दीदी। पर भगवान् से सदा यही प्रार्थना करूँगा कि तुम्हारी सी बहनें घर घर में रहें......?

"पर देखते नहीं पानी तो अब भी बरस रहा है मैं तुम्हें कैसे जाने दूँगी।

"आप चिन्ता न करें मैं अंधेरे ही अंधेरे बहुत दूर निकल जाऊँगा।

"नहीं जब तक पानी बन्द नहीं होता मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। और आज तो पुलिस तुम्हारी खोज कर रही है। कोई भी मार्ग तुम्हारे लिये निरापद नहीं है।

पुलिस की आँखें सदा की भाँति आज भी धोखा खायेंगी। आप विश्वास करें और मुझे अपने लिये कोई डर भी नहीं है। मेरा जो कुछ भी हो, अपनी इस रक्षा के लिए मैं आपको संकट में नहीं डाल सकता।

"मैं नहीं समझी ?"

"अभी तक घर के स्वामी की अनुपस्थिति में आ... स्वामिनी थीं ? अब गृह स्वामी स्वयं ...

उठा।

मैं चिन्ता में पड़ गई।

उसने दोनों चादरें मेरे सामने रखते हुए कहा—अच्छा प्रणाम, अब मैं चला।

मेरा हृदय हिल उठा......रो उठा, ओह किसी बहिन का प्यारा भाई किसी माँ का दुलारा लाल दिनेश अभागा दिनेश .. नहीं......नहीं मातृभूमि पर उत्सर्ग होने वाला माँ के मुकुल का यह अनमोल रत्न दिनेश यदि आज गिरफ्तार हुआ तो उसकी सजा मौत है ......मौत......केवल मौत ? मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—जरा ठहर मैं अभी आ रही हूँ।—जरा देर में लौट कर मैंने भैया के लिये बड़े ही यत्न से गूँथी हुई, अपनी राखी उसकी कलाई में बाँध दी, और अपनी शाल उसे ओढ़ा दिया।

"यह क्या !"

"कुछ नहीं यह बहन के स्नेह का पुनीत धागा भगवान् तुम्हारे लिए अखण्ड 'कवच' करे। मैं भी कभी गर्व से सोचूँगी—"मैंने कभी देश-दीवाने क्रांतिकारी भाई की कलाई में राखी बांधी थी......मेरी कुचली हुई आत्मा के लिये यह कितना बड़ा संतोष होगा......उसने झुक कर मेरे पांव छुए। और आँखों में आये हुए आंसुओं को अपनी मुस्कान में समेटता हुआ वेग से बाहर निकल गया।

निकट कहीं का घंटा बोला—चिड़ियां चहचहा उठीं मैं चुपचाप आकर पलंग पर लेट गई............वह पराधीन भारत की निशा थी और यह है स्वतन्त्र भारत का प्रभात ?